अध्याय 8

''यीशु ही मसीह है''

एक और भीड़ को खिलाना (8:1-10)[1]

[1]उन दिनों में जब फिर बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई, और उनके पास कुछ खाने को न था, तो उसने अपने चेलों को पास बुलाकर उनसे कहा, [2]''मुझे इस भीड़ पर तरस आता है, क्योंकि यह तीन दिन से बराबर मेरे साथ है, और उनके पास कुछ भी खाने को नहीं। [3]यदि मैं उन्हें भूखा घर भेज दूँ, तो मार्ग में थक कर रह जाएँगे; क्योंकि इनमें से कोई कोई दूर से आए हैं।'' [4]उसके चेलों ने उसको उत्तर दिया, ''यहाँ जंगल में इतनी रोटी कोई कहाँ से लाए कि ये तृप्त हों?'' [5]उसने उनसे पूछा, ''तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?'' उन्होंने कहा, ''सात।'' [6]तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी, और वे सात रोटियाँ लीं और धन्यवाद करके तोड़ीं, और अपने चेलों को देता गया कि उनके आगे रखें, और उन्होंने लोगों के आगे परोस दिया। [7]उनके पास थोड़ी सी छोटी मछलियाँ भी थीं; उसने धन्यवाद करके उन्हें भी लोगों के आगे रखने की आज्ञा दी। [8]वे खाकर तृप्त हो गए और चेलों ने शेष टुकड़ों के सात टोकरे भरकर उठाए। [9]और लोग चार हज़ार के लगभग थे; तब उसने उनको विदा किया, [10]और वह तुरन्त अपने चेलों के साथ नाव पर चढ़कर दलमनूता प्रदेश को चला गया।

यह हवाला यीशु के एक भीड़ को खिलाने की अलग घटना बताता है। इसे इस बात से अलग किया गया है कि एक मामले में पांच हज़ार पुरुष थे जबकि दूसरे में चार हज़ार पुरुष।[2] जहां यह आश्चर्यकर्म हुआ वह भी हमें यह तय करने में सहायता करता है, क्योंकि यह आश्चर्यकर्म दिकापुलिस के इलाके में हुआ जबकि दूसरा गलील के बैतसैदा में (देखें यूहन्ना 12:21)। इसके अलावा, यह सम्भव है कि इस अवसर पर जिन चार हज़ार पुरुषों को खिलाया गया उनमें से अधिकतर अन्यजाति थे, जबकि दूसरे मामले में जिन्हें खिलाया गया वे सम्भवतया यहूदी थे। इस घटना में सात रोटियां और कुछ मछलियां थीं, परन्तु दूसरे विवरण में पांच रोटियां और दो मछलियां ली गई थीं। इस बार बचे हुए टुकड़ों के सात टोकरे इकट्ठे किए गए थे। σπυρίς (*spuris*) शब्द टोकरे को दर्शाता है जो इतना बड़ा होता था कि उसमें आदमी आ सकता था (देखें प्रेरितों 9:25), परन्तु बैतसैदा में टुकड़ों की बारह टोकरियां (κόφινος, *kophinos*) उठाई गईं (6:43)।

मत्ती 15:38 के अनुसार इस बार ''स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार हज़ार पुरुष थे''; परन्तु मरकुस 8:9 में चार हज़ार के सम्बन्ध में लिंग का उल्लेख नहीं है। दो विवरणों के बीच कोई विरोधाभास नहीं मिलता। आम तौर पर नये नियम के लेखक केवल पुरुषों की गिनती करते थे। हम सुनिश्चित हो सकते हैं कि इन दोनों आश्चर्यकर्मों के बारे में सुसमाचार के लेखकों ने बिल्कुल सही तथ्य दिए, क्योंकि जब यीशु ने बाद में अपने भीड़ को खिलाने का ध्यान दिलाया (8:16-21), तो उसने दोनों अवसरों की साफ़ साफ़ बात की जब उसने भोजन बढ़ाया था।

यीशु ने जो कुछ यहूदियों के लिए किया था, वही उसने अन्यजातियों के लिए भी किया था। एक एक करके वह इस विचार पर ज़ोर दे रहा था कि अन्यजाति लोग यदि सुसमाचार को मान लेते हैं तो वे अशुद्ध नहीं माने जाएंगे।

आयतें 1-3. यह सम्भव है कि यीशु के आस-पास इकट्ठा हुई यह **बड़ी भीड़** उस आदमी द्वारा सुसमाचार सुनाए जाने के कारण ही आई थी, जिसमें से यीशु ने दुष्टात्माओं को निकाला था और जो बाद में दिकापुलिस के इलाके में प्रचार करता हुआ चला गया था[3] (देखें 5:1-20)। साफ़ है कि यह **भीड़ तीन दिन से** (दिनों की यहूदियों की गणना के हिसाब से) यीशु के पीछे चल रही थी **बराबर मेरे साथ है**। यीशु की शिक्षा और उपस्थिति में गहरे लगाव और दिलचस्पी पर यह शानदार टिप्पणी है। वचन यह नहीं कहता है कि वे साथ **कुछ भी खाने को नहीं** *लाए* थे, बल्कि यह कहता है कि इस समय उनके पास खाने को कुछ नहीं था। इससे पहले कि हमें लोगों की कुछ बात या शिकायत पता चले, यीशु ने **तरस** खाते हुए उत्तर दिया: ''**यदि मैं उन्हें भूखा घर भेज दूँ, तो मार्ग में थक कर रह जाएँगे; क्योंकि इनमें से कोई कोई दूर से आए हैं।**'' उनके मांगने से पहले ही उसे पता था कि उनकी क्या आवश्यकता है (देखें मत्ती 6:8)। हर घटना में उसे सचमुच में सामर्थ में ईश्वरीय दिखाया गया है। हम जानते हैं कि यीशु ने समय में संसार के हर बीमार को चंगा नहीं किया, और उसने हर भूखे को चमत्कार से खाना नहीं खिलाया; परन्तु उसने उन लोगों के लिए जिनसे वह मिला तरस अवश्य दिखाया।

खिलाने के पिछले विवरण में, यीशु को तरस खाते हुए दिखाया गया था, क्योंकि लोग ''उन भेड़ों के समान थे जिनका कोई रखवाला न हो'' (6:34)। यीशु ने यहां पर एक बड़े समूह के लिए प्रीतिभोज उपलब्ध करवाया जिनमें अधिकतर अन्यजाति थे, जो कि उनके लिए उसके प्रेम को दिखाता है और संकेत देता है कि शीघ्र ही उन्हें राज्य में प्रवेश करने का अवसर मिलने वाला था। उसका उद्देश्य मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करना था। यीशु की दिलचस्पी सब लोगों में है वे यहूदी हों या फिर अन्यजाति। उसकी यात्रा के इस भाग में सुरूफिनीकी स्त्री की सहायता के बारे में बताया गया (7:24-30), जो कि गैर यहूदियों के लिए जीवन की रोटी दिए जाने के लिए आरम्भ का संकेत था।

आयतें 4-7. उसके चेलों ने उसको उत्तर दिया, ''यहाँ जंगल में इतनी रोटी कोई कहाँ से लाए कि ये तृप्त हों?'' हम कह सकते हैं, ''प्रेरित पहले वाले अश्चर्यकर्म को कैसे भूल सकते थे, जिसमें इतनी भीड़ को खिलाया गया था?'' प्रेरितों ने ''हम'' सर्वनाम शब्द पर ज़ोर दिया, जो कि यह दिखाता है कि वे कुछ कर पाने की अपनी अयोग्यता पर विचार कर रहे थे, न कि यह सुझाव दे रहे थे कि प्रभु अयोग्य है। पहले की तरह ही उन्हें नहीं पता था कि क्या करें।

उसने उनसे पूछा, ''तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?'' उन्होंने कहा, ''सात।'' तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी, और वे सात रोटियाँ लीं और धन्यवाद करके तोड़ीं। ''धन्यवाद करके'' शब्द यूनानी शब्द εὐχαριστέω (*eucharisteō*) से लिया गया है जो कि ''यूखरिस्त'' का मूल है। कइयों ने भीड़ को खिलाने के लिए जो यीशु ने किया उससे लेकर इसका इस्तेमाल ''प्रभु भोज'' के लिए शीर्षक के रूप में किया है (देखें 1 कुरि. 11:20)। बाइबल में कहीं पर भी इस शब्द का इस्तेमाल इस प्रकार से नहीं हुआ है। यीशु ने रोटियां **तोड़ीं और अपने चेलों को देता गया कि उनके आगे रखें, और उन्होंने लोगों के आगे परोस दिया।**

उनके पास थोड़ी सी छोटी मछलियाँ भी थीं; उसने धन्यवाद करके उन्हें भी लोगों के आगे रखने की आज्ञा दी।

आयत 8. वे खाकर तृप्त हो गए। हमें यह नहीं बताया गया है कि यह आश्चर्यकर्म कैसे और कब हुआ। हो सकता है कि यीशु के आशीष देने पर वे रोटियां और मछलियां बढ़ गई हों। यह आश्चर्यकर्म प्रार्थना के अंत में या यीशु के रोटी देते रहने पर तुरन्त हो गया होगा, जैसा कि यूनानी कृदंत से संकेत मिलता है। यूनानी धर्मशास्त्र में सह भी सुझाव है कि यीशु ने ''रोटियों'' और मछलियों को अलग-अलग आशीष दी।

और चेलों ने शेष टुकड़ों के सात टोकरे भरकर उठाए। टुकड़े उठाने के साथ-साथ खाना परोसने के लिए सात टोकरे चाहिए होंगे। ऐसे टोकरे वहां कैसे पहुंचे? कइयों का अनुमान है कि उनका इस्तेमाल खेतों में अनाज इकट्ठा करने के लिए किया जाता था। ऐसा ''टोकरा'' (*स्पुरिस*) इतना बड़ा होता था कि पौलुस को दमिश्क की दीवार से ऐसे ही एक टोकरे में रखकर उतारा गया था (2 कुरि. 11:33)।

आयतें 9, 10. इस भीड़ को खिलाने के बाद, **उसने उनको विदा किया**। बाइबल बताती है कि यीशु **तुरन्त अपने चेलों के साथ नाव पर चढ़कर** झील पार करके गलील की झील के पश्चिम किनारे की ओर चला गया। मरकुस 8:10 जहां यह कहता है कि यीशु **दलमनूता प्रदेश को चला गया**, वहीं मत्ती 15:39 में इसी जगह को ''मगदन देश'' कहा गया है। हमें चाहे यह पता नहीं है कि ''दलमनूता प्रदेश'' कहां है, पर हम यह कुछ हद तक पक्का कह सकते हैं कि यह पास के मगदला नाम से सम्बन्धित था, जो कि गलील के झील के पश्चिमी तट के तिब्रियास के निकट था।[4] टीकाकार आम सहमति रखते हैं कि ''दलमनूता'' या तो मगदला का दूसरा नाम था या यह पास का कोई गांव था।[5] सबसे बढ़िया व्याख्या डब्ल्यू. यूइंग की लगती है, ''इन हवालों से यह अनुमान लगाना तर्कसंगत है कि 'मगदन की समाएं' और 'दलमनूता के भाग' एक-दूसरे से सटे हुए थे।''[6]

फरीसियों का यीशु के साथ फिर बहस करना (8:11-13)[7]

[11]फिर फरीसी आकर उससे वाद-विवाद करने लगे, और उसे जाँचने के लिये उससे कोई स्वर्गीय चिह्न माँगा। [12]उसने अपनी आत्मा में आह भर कर कहा, ''इस समय के लोग क्यों चिह्न ढूँढ़ते हैं? मैं तुम से सच कहता हूँ कि इस समय के लोगों को कोई चिह्न नहीं दिया जाएगा।'' [13]और वह उन्हें छोड़कर फिर नाव पर चढ़ गया और पार चला गया।

आयत 11. फरीसी (और शास्त्रियों मत्ती 12:38 के अनुसार) ने यीशु के आश्चर्यकर्मों को यह कहते हुए नकार दिया था कि ऐसे आश्चर्यकर्म बालज़बूल के द्वारा किए गए थे (मत्ती 12:24; मरकुस 3:22; लूका 11:15)। अब यीशु के वे कट्टर वैरी थे और उसके प्रभाव को नष्ट करने के लिए उन्होंने कुछ भी करना था।

यहां पर, उन्होंने उसे ढोंगी साबित करने का एक और प्रयास किया। उन्होंने **उसे जांचने के लिए उससे कोई स्वर्गीय चिह्न मांगा**। इसका अर्थ यह होगा कि चिह्न की तरह जो इस्राएलियों को दिखाया गया था जब उसने आकाश से मन्ना भेजा (निर्गमन 16), या बाल के पुजारियों से

एलिय्याह के झगड़े के दौरान वेदी पर आग भेजी थी (1 राजा. 18), ऐसा चिह्न केवल परमेश्वर दे सकता था। फरीसी यरदन नदी के पानी के दो अलग करने (यहोशू 3), यरीहो की शहरपनाह को गिराने (यहोशू 6), या सूर्य और चन्द्रमा को रोक देने (यहोशू 10:12-14) जैसे चिह्नों की मांग कर रहे थे। परन्तु यीशु के चिह्न दिखावे के लिए नहीं थे। वे भलाई करने के लिए थे; इससे भी बढ़कर वे उस संदेश की पुष्टि करने के लिए थे जो वह देता था कि यह परमेश्वर की ओर से दिया गया है (मरकुस 16:20; यूहन्ना 20:30, 31; इब्रा. 2:4)।

आयतें 12, 13. यीशु एक बार फिर से **आह भर** (ἀναστενάζω, *anastenazō*) रहा था। यह शब्द 7:34 में इस्तेमाल किए गए शब्द (στενάζω, *stenazō*) का मज़बूत रूप है, जो संकेत देता है कि यीशु को बड़ा दु:ख हुआ या खीज आई क्योंकि इतना सब कुछ करने के बावजूद भी फरीसियों ने चिह्न मांगा।

लगातार **चिह्न ढूंढ़ते** रहने से यीशु को बड़ा दु:ख हुआ, इसी कारण उसने यह ''आह'' भरी होगी। उसने वास्तव में विश्वास की उनकी कमी पर ''चीख'' मारी।[8] आश्चर्यकर्म करने की उनकी इच्छा आज के उन लोगों की इच्छा के जैसी है जो यह साबित करने के लिए कि परमेश्वर है चाहते हैं कि उनके लिए आश्चर्यकर्म किए जाएं। ऐसे लोगों को जिनके मन अविश्वास के कारण कठोर हो गए हैं, फरीसियों की तरह मरे हुओं में से जी उठने वाला भी विश्वास नहीं दिला पाएगा (देखें लूका 16:31)। मनुष्यजाति में पूर्वधारणा रोकने वाला गुण हो सकता है। ऐसी सोच ''बुर और व्यभिचारी'' लोगों की पहचान है (मत्ती 12:39; 16:4)। यीशु ने उन्हें, डांट लगाई जिन्होंने केवल चिह्न देकर विश्वास करना था (यूहन्ना 4:48)। आदर्श रूप में सुनाए गए वचन पर विश्वास हो जाना चाहिए। विनम्र, सच्चाई के खोजी लोग केवल यही करने को उत्सुक हैं।

आज की तरह ही बेशक यीशु के समय में, आश्चर्यकर्मों के झूठे दावे किए जा रहे थे; परन्तु साफ़ दिखाई देने वाले अंतर में सही बात टिक जानी थी। साफ़ तौर पर आश्चर्यकर्म यीशु के काम में अलौकिक थे। उनमें से अधिकतर तो तात्कालिक थे। लोगों की दृष्टि, सुनने, बोलने को बहाल किया जाता था; कोढ़ को दूर किया जाता था; दुष्टात्माओं को निकाला जाता था, लंगड़ों को खड़ा किया जाता और चलाया जाता था। कुछ लोगों को तो मुर्दों में से जिलाया भी गया था।

सदियों से बहुत से लोग झूठे आश्चर्यकर्मों के द्वारा भ्रमित होते रहे हैं क्योंकि उनमें ''सच्चाई से प्रेम'' नहीं था (2 थिस्स. 2:8-12)। यह समझ से बाहर ही लगती है कि परमेश्वर सच्चाई के बजाय अधर्म से खुश होने वाले लोगों में ''भटका देने वाली सामर्थ्य'' (झूठ को सौंप देना) भेजा था, परन्तु उसने भेजी!

ये यहूदी जंगल में अपने पूर्वजों के जैसे ही थे जो इतने सारे आश्चर्यकर्मों के बावजूद जो उसने उनके लिए किए थे, परमेश्वर से फिर गए थे। **इस समय के लोग** (γενεά, *genea*) का अर्थ वे लोग हैं जो उस समय रह रहे थे। 13:30, 31 में यीशु ने कहा, ''मैं तुम से सच कहता हूँ कि जब तक ये सब बातें न हो लेंगी, तब तक *ये लोग* जाते न रहेंगे। आकाश और पृथ्वी टल जाएँगे, परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी'' (देखें मत्ती 24:34, 35)।

सच (ἀμήν, *amēn*, ''निश्चय ही'') शपथ के जैसा ही था। आर. ए. कोल ने बताया है कि ''सामी बोलचाल में, इसमें, किसी शपथ का पूरा ज़ोर होता है, वैसे ही जैसे किसी यहूदी के लिए दो बार 'आमीन' कहना'' (देखें यूहन्ना 1:51)। उसने निष्कर्ष निकाला, ''यह प्रभु की

ओर किसी कार्यवाही जिसे उसने परखे जाने पर बिल्कुल नकार दिया था, पक्का इनकार था'' (मत्ती 4:6, 7)।[9] यीशु का शैतान के साथ किसी प्रकार का कोई मेल नहीं था। अपने परखे जाने के समय उसने पक्का इरादा किया था कि केवल सार्वजनिक उत्तेजना और प्रदर्शन के लिए इस पथ पर नहीं चलना।

यह स्थिति नासरत की स्थिति जैसी ही थी (मत्ती 13:58), जहां यीशु लोगों के विश्वास की कमी के कारण ''सामर्थ के काम'' नहीं कर पाया (ESV), केवल *छोटी मोटी* कुछ चंगाइयों को छोड़। यहूदियों के चिह्न मांगने की बात सुसमाचार के चारों विवरणों में है।[10] 8:12 में जहां यह कहा गया है कि **इस समय के लोगों को कोई चिह्न नहीं दिया** जाना था, वहीं मत्ती 16:4 में उसने कहा कि योना के चिह्न को छोड़ उन्हें कोई और चिह्न नहीं दिया जाना था।[11] यह कहने के बाद, **वह उन्हें छोड़कर फिर नाव पर चढ़ गया और पार चला गया।** उन लोगों के लिए जो जानबूझकर यीशु के आश्चर्यकर्मों को नहीं देखते थे और कोई भी चिह्न बेकार होना था।

जहां कहीं विश्वास की ओर झुकाव था वहां पर यीशु ने इसे मज़बूत करने के लिए और प्रमाण देना था; परन्तु जहां विश्वास करने की कोई इच्छा नहीं थी, वहां उसने बहुत कम आश्चर्यकर्म, यदि कोई हुआ करना था। उसके आश्चर्यकर्मों से पहले से यह दिखा दिया गया था कि इतिहास की सबसे बड़ी घटना घट चुकी है। खामोशी के चार सौ वर्ष बीत गए थे जिनमें किसी वास्तविक नबी की ओर से कोई बात नहीं की गई थी, परन्तु अब परमेश्वर उस पुराने युग से अलग कार्यवाही करने को तैयार था। ये यहूदी अगुवे, जो पुराने के इतने आदी थे, कि वे इतने चिह्नों को जो उसने अपनी सेवकाई के दौरान दिखाए थे, मानने को तैयार नहीं थे, परमेश्वर के पुत्र से और चिह्न मांग रहे थे। उनके मन कितने कठोर और संकीर्ण थे! इतना समय बीत जाने के बाद आश्चर्यकर्मों के संकेत से ही उन्हें मान जाना चाहिए था कि परमेश्वर संसार में काम कर रहा है।

यहूदियों ने माना कि उन्होंने दोनों नियमों के चार सौ वर्षों के अंतराल के दौरान किसी नबी को नहीं सुना था। यह हो सकता है कि उनमें से कइयों ने इतनी बड़ी सीरियाई सेना की पराजय को (लगभग 165 ई.पू.) परमेश्वर का चमत्कारी काम मान लिया हो। परन्तु यीशु द्वारा किए गए आश्चर्यकर्म उनके बीच परमेश्वर की सामर्थ का स्पष्ट प्रदर्शन थे।

लगता है कि चिह्नों की मांग से यीशु इतना निराश हुआ कि वह फिर से गलील की झील के दूसरी ओर चला गया, जहां उसने उन अन्यजातियों के बीच में होना था जिनके मन खुले थे और उन्होंने उसके वचनों को ग्रहण कर लेना था। यूहन्ना 1:11 की बात एक अफसोसजनक और बार-बार होने वाली घटना को दिखाती है: ''वह अपने घर आया और उसके अपनों ने उसे ग्रहण नहीं किया।'' उसका ''अन्यजातियों के गलील'' में लौट जाना भविष्यद्वाणी का पूरा होना था, और मत्ती 4:12-16 में यशायाह 9:1, 2 को उद्धृत किया गया है:

> जब उसने यह सुना कि यूहन्ना बन्दी बना लिया गया है, तो वह गलील को चला गया। और वह नासरत को छोड़कर कफरनहूम में, जो झील के किनारे जबूलून और नप्ताली के देश में है, जाकर रहने लगा; ताकि जो यशायाह भविष्यद्वक्ता के द्वारा कहा गया था, वह पूरा हो: ''जबूलून और नप्ताली के देश, झील के मार्ग से यरदन के पार, अन्यजातियों का गलील - जो लोग अंधकार में बैठे थे, उन्होंने बड़ी ज्योति देखी; और जो मृत्यु के देश

और छाया में बैठे थे, उन पर ज्योति चमकी।''

यशायाह ने आगे कहा,

> क्योंकि हमारे लिये एक बालक उत्पन्न हुआ, हमें एक पुत्र दिया गया है; और प्रभुता उसके कांधे पर होगी, और उसका नाम अद्‌भुत युक्ति करनेवाला पराक्रमी परमेश्वर, अनन्तकाल का पिता, और शान्ति का राजकुमार रखा जाएगा (यशा. 9:6)।

''फरीसियों और हेरोदेस के खमीर से सावधान'' (8:14-16)[12]

[14]चेले रोटी लेना भूल गए थे, और नाव में उनके पास एक ही रोटी थी। [15]उसने उन्हें चिताया, ''देखो, फरीसियों के खमीर और हेरोदेस के खमीर से चौकस रहो।'' [16]वे आपस में विचार करके कहने लगे, ''हमारे पास रोटी नहीं है।''

आयतें 14-16. फरीसियों के खमीर यहूदी धर्म के रस्मो-रिवाज़ों को कहा गया है। धार्मिक अगुवे अपने परम्परावाद का कपटपूर्ण दिखावा करते थे। लूका 12:1 में यीशु ने यह स्पष्ट विवरण दिया:

> इतने में जब हज़ारों की भीड़ लग गई, यहां तक कि वे एक दूसरे पर गिरे पड़ते थे, तो वह सब से पहले अपने चेलों से कहने लगा, ''फरीसियों के कपटरूपी खमीर से चौकस रहना।''

फरीसियों ने यीशु से जिस प्रकार से प्रश्न पूछे उसमें इसी सोच को दिखाया। उन्होंने पूछा, परन्तु वास्तव में वे उत्तर नहीं ढूंढ़ रहे थे; क्योंकि जब भी यीशु उत्तर देता, वे उसका खण्डन कर देते और उसे हराने या बदनाम करने की कोशिश करते। उनकी शिक्षाएं बेशक मूसा की शिक्षाएं थीं (मत्ती 23:1-3); परन्तु उनकी ज़बानी परम्पराओं के साथ मिलकर, उनकी रीतियां, सच्ची धार्मिकता से कहीं कम थीं।

बाइबल बुराई या झूठी शिक्षा के प्रतीक के रूप में ''खमीर'' शब्द का इस्तेमाल करती है। खमीर की तरह, झूठी शिक्षा किसी भी चीज़ में घुसकर उसे संक्रमित कर सकती है (गला. 5:9)।[13] फसह के समय यहूदियों के घरों में से खमीर को निकालना आवश्यक होता था (निर्गमन 12:18-20)। इसे भेंटों के साथ इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं थी। (देखें निर्गमन 23:18; 34:25; लैव्य. 2:11; 6:17.)

हेरोदेस के खमीर और ''फरीसियों का खमीर'' चाहे दोनों ही बुरे प्रभाव थे, परन्तु दोनों अलग-अलग हो सकते हैं। धार्मिक अगुवे पवित्र शास्त्र के बजाय परम्परा की शिक्षा अधिक देते थे; इसलिए उनकी शिक्षा में छुड़ाने वाला आत्मिक महत्व ना के बराबर था। हेरोदेस शानो शौकत वाले जीवन की ओर संकेत यीशु और बारहों गलील की झील के पार जाते हुए शायद तिब्रियास के उसके भव्य महल को देखकर दिया गया हो सकता है।

यीशु के अनुयायियों के लिए हेरोदेस या फरीसियों के जैसे होना अपने आपको अपने आस पास के संसार के जैसे बनने देना होना था। हेरोदेस का ''खमीर'' ''अपनी सेवा करने वाला''

व्यवहार होगा, जिस कारण यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को पहले जेल हुई और फिर उसकी हत्या हुई, चाहे वह यूहन्ना से प्रभावित भी था।

यीशु ने कहा, ''**चौकस रहो!**'' वह चाहता था कि उसके प्रेरित बुरे प्रभावों के ''खमीर'' से **सावधान** रहें। गलत रीतियों और गलत शिक्षाओं ने उन्हें जीवन के बजाय विनाश की ओर ले जाना था। इस चेतावनी को सुनकर चेले हैरान हुए होंगे, ''अब हमने कौन सी गलती की है?'' उन्हें दूरदर्शी न होने का आरोप लगने की उम्मीद होगी क्योंकि वे **रोटी लेना भूल गए थे**, सो एक बार फिर से उन्होंने यीशु की शिक्षा का गलत अर्थ निकाला। उनके ध्यान में फटकार था जबकि फटकार देने का कोई इरादा नहीं था।

यीशु ने उनके दूरदर्शी न होने के कारण उन पर दोष नहीं लगाया बल्कि विश्वास की कमी के कारण दोष लगाया। पिछले अनुभवों से वे यह समझ नहीं पाए थे कि यीशु ने उनके लिए मुहैया किया था। उन्हें पता होना चाहिए था कि उसे रोटी की चिंता नहीं, क्योंकि उसने दिखा दिया था कि वह भीड़ को खिला सकता है। इसके बजाय उसे यह चिंता था कि उसके चेले बुरी रीतियों या झूठी शिक्षाओं पर न चल पड़ें। फरीसियों के और हेरोदेस के ''खमीर'' में दोनों बातें होंगी।

''क्या तुम अभी तक नहीं समझे?'' (8:17-21)[14]

[17]यह जानकर यीशु ने उनसे कहा, ''तुम क्यों आपस में यह विचार कर रहे हो कि हमारे पास रोटी नहीं? क्या अब तक नहीं जानते और नहीं समझते? क्या तुम्हारा मन कठोर हो गया है? [18]क्या आँखें रखते हुए भी नहीं देखते, और कान रखते हुए भी नहीं सुनते? और क्या तुम्हें स्मरण नहीं [19]कि जब मैं ने पाँच हज़ार के लिए पाँच रोटियाँ तोड़ी थीं तो तुम ने टुकड़ों की कितनी टोकरियाँ भरकर उठाईं?'' उन्होंने उससे कहा, ''बारह टोकरियाँ।'' [20]''और जब चार हज़ार के लिये सात रोटियाँ थीं तो तुम ने टुकड़ों के कितने टोकरे भरकर उठाए थे?'' उन्होंने उससे कहा, ''सात टोकरे।'' [21]उसने उनसे कहा, ''क्या तुम अब तक नहीं समझते?''

आयतें 17-21. चेलों की नासमझी को जानते हुए, यीशु ने उनसे पूछा, ''**तुम आपस में यह विचार क्यों कर रहे हो कि हमारे पास रोटी नहीं?**'' भोजन के दो बार बढ़ने के आश्चर्यकर्मों को देखने के बावजूद उन्हें समझ में नहीं आया था कि यीशु उन्हें क्या दिखा रहा था। वे मसीह की असीम सामर्थ को नहीं समझे थे। यीशु की दयालुता इस बात में दिखाई देती है कि उसने ताड़ना को दो प्रश्नों में रखा: ''**क्या अब तक नहीं जानते और समझे? फिर तुम्हारा मन कठोर हो गया है?**'' यीशु और चेलों के लिए यह कितना दुःखी करने वाला समय था! उसने उन्हें सिखाते हुए इतना समय लगाया था और अभी भी उन्हें उसके शब्दों के अर्थ की समझ नहीं आ रही थी।

यीशु ने आगे कहा, ''**क्या आँखें रखते हुए भी नहीं देखते, और कान रखते हुए भी नहीं सुनते?**'' ऐसा लगता है कि जैसे वह कह रहा हो कि जिन कठोर शब्दों का इस्तेमाल उसने यहूदियों के लिए किया था अब उसके चेलों के लिए है। यिर्मयाह 5:21 में से उद्धृत किए गए

हवाले में, यीशु ने कहा कि दृष्टांतों में बातें करने का एक उद्देश्य उन लोगों से सच्चाई को छिपाना था जिनके मन ''नहीं सुनते'' ताकि वे न समझें (मत्ती 13:13-17)। यह विश्वास के द्वारा असामान्य शिक्षाओं को समझने की उनकी बेपरवाही और योग्यता की कमी के लिए डांट थी।

यीशु ने उन्हें भीड़ को खिलाने के अपने आश्चर्यकर्म याद दिलाया ताकि उन्हें पता चल जाए कि उन्हें रोटी लाना भूलने के लिए नहीं डांट रहा था: **''और क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि जब मैं ने पाँच हज़ार के लिए पाँच रोटियाँ तोड़ी थीं तो तुम ने टुकड़ों की कितनी टोकरियाँ भरकर उठाईं? ... और जब चार हज़ार के लिये सात रोटियाँ थीं तो तुम ने टुकड़ों के कितने टोकरे भरकर उठाए थे?''** यह डांट उन दो आश्चर्यकर्मों को याद न रखकर यह निष्कर्ष निकालने के लिए थी कि यीशु को यह चिंता है कि भोजन काफ़ी नहीं है। वह किसी भी आवश्यकता को पूरा कर सकता था। यदि वह इस बात को समझ पाते तो उन्हें पूरा विश्वास होना चाहिए था कि वह प्रतिज्ञा किया हुआ मसीहा है। यदि उन्हें समझ थी कि वह कौन है, तो वे भोजन के काफ़ी न होने, झील के खतरों, फरीसियों के भय और किसी भी प्रकार के और भय से, जो हो सकता था पर काबू पाने के लिए अपने विश्वास को लागू कर सकते थे।

उसने उनसे कहा, ''क्या तुम अब तक नहीं समझते?'' यदि हम इस सच्चाई को समझते हैं कि यीशु कौन है, तो हम भी टूटने के कगार पर आ सकते हैं परन्तु टूटते नहीं, जीवन की गहराइयों तक आकर डूबते नहीं और जीवन की ऊंचाइयों पर आकर नियन्त्रण से बाहर नहीं होते। वास्तव में प्रेरित यही सोच रहे थे कि उन्हें अपना अगला भोजन कहां मिलेगा।[15] वे आपस में बातें कर रहे थे कि उनकी परिस्थिति के लिए किसे दोष दिया जाए। उत्तर न मिली समस्याओं को आपस में बहस करने के बजाय सीधे प्रभु के पास ले जाया जाना चाहिए था। मत्ती 16:12 दिखाता है कि अंत में उन्हें समझ में आ गया कि उसने फरीसियों की ''शिक्षा'' की बात की थी न कि वास्तविक ''रोटी के खमीर'' की।

अंधे को चंगा करना (8:22-26)

[22]वे बैतसैदा में आए; और लोग एक अंधे को उसके पास ले आए और उससे विनती की कि उसको छुए। [23]वह उस अंधे का हाथ पकड़कर उसे गाँव के बाहर ले गया, और उसकी आँखों में थूककर उस पर हाथ रखे, और उससे पूछा, ''क्या तू कुछ देखता है?'' [24]उस ने आँख उठा कर कहा, ''मैं मनुष्यों को देखता हूँ; वे मुझे चलते हुए पेड़ों जैसे दिखाई देते हैं।'' [25]तब उसने दोबारा उसकी आँखों पर हाथ रखे, और अंधे ने ध्यान से देखा। वह चंगा हो गया, और सब कुछ साफ-साफ देखने लगा। [26]उसने उसे यह कहकर घर भेजा, ''इस गाँव के भीतर पाँव भी न रखना।''

आयत 22. वे बैतसैदा में आए। यह बैतसैदा कफरनहूम के निकट वाला बैतसैदा नहीं है बल्कि गलील की झील के उत्तर पूर्वी तट पर वाला था।[16] इसे उधर से गुज़रने वालों के बीच होने वाले व्यापार पर कर इकट्ठा करने में सहायता के लिए हेरोदेस फिलिप्पुस द्वारा बसाया गया था। उसने इस नगर का नाम ''यूलियास'' अगस्तुस कैसर की बदनाम पुत्री के नाम पर रखा था।

यहां पर यीशु और उसके चेलों की भेंट **एक अंधे** से हुई। इस आदमी को यीशु **के पास**

ले आने वालों ने **उससे विनती की कि उसको छुए**। विलियम बार्कले ने प्राचीन मध्यपूर्व में अंधेपन की सामान्य समस्या का यह संक्षिप्त अवलोकन दिया है:

> अंधापन पूर्व के बड़े श्रापों में से एक था जो कि आज भी है। यह कुछ कुछ आंखों की सोजिश और कुछ कुछ सूर्य की तेज़ चमक के कारण होता था। इसमें इस बात से और बिगाड़ जाता था कि लोगों को स्वास्थ्य विज्ञान तथा साफ़ सफ़ाई का कुछ पता नहीं होता था। पपड़ी जमी वाली आंखों वाले व्यक्ति को देखना आम बात होती थी, जिन पर मक्खियां भिनभिनाती रहती थीं। स्वाभाविक ही है कि इससे संक्रमण इधर उधर फैल जाता था और अंधापन पलस्तीन की विपत्ति था।[17]

आयतें 23-25. और हलचल से बचने के लिए यीशु **उस अंधे का हाथ पकड़कर उसे गाँव के बाहर ले गया**। ये चेले अभी अभी अपने आत्मिक अंधेपन से उबर पाए थे, जबकि इस आदमी को अभी भी उसके शारीरिक अंधेपन से चंगाई के आवश्यकता थी। इसलिए वचन में यहां पर एक उपयुक्त कहानी है। दूसरे लोग इस अंधे को चंगाई के लिए यीशु के पास लेकर आए थे। यीशु से दया करने की विनतियां इस आदमी की ओर से नहीं बल्कि उनकी ओर से अधिक आई लगती हैं (8:22)।

और उसकी आँखों में थूककर उस पर हाथ रखे, और उससे पूछा, ''क्या तू कुछ देखता है?'' उस ने आँख उठा कर कहा, ''मैं मनुष्यों को देखता हूँ; वे मुझे चलते हुए पेड़ों जैसे दिखाई देते हैं।'' उसकी आंखों पर थूक के इस्तेमाल (''उसकी आंखों में थूकना'') का से बढ़कर वास्तविक चंगाई से इतना सम्बन्ध जितना यीशु के ''हाथ रखना'' का था। परन्तु उस समय के अधिकतर लोगों को मानना था कि थूक में चिकित्सीय गुण होते हैं। शायद अंधे को इस बात का पता था और इसलिए यीशु की कार्यवाही से उसे प्रोत्साहित किया गया, जब उसने बहरे हकले की जीभ को थूक से छुआ (7:31-37)। यीशु ने उस आदमी का ध्यान केवल उस बात की ओर खींचा, जो होने वाली थी।

तब उसने दोबारा उसकी आँखों पर हाथ रखे, और अंधे ने ध्यान से देखा। वह चंगा हो गया, और सब कुछ साफ-साफ देखने लगा। इस आश्चर्यकर्म को एकदम से पूरा करना उस आदमी के लिए डराने वाला हो सकता था, सो यीशु ने इस आश्चर्यकर्म को चरणों में किया। वह मनुष्य की हर आवश्यकता को जानता था और इस अंधे की स्थिति के उसके ध्यान से इस बात का पता चलता है कि वह हमारी भावनाओं को जानता है और हमारे साथ समानुभूति रखता है।

उसके हाथों का दोहरा उपयोग विचित्र था। यीशु कहीं पर भी और किसी पर दो बार हाथ नहीं रखे। दो कदमों वाली प्रक्रिया से इस आदमी में विश्वास बढ़ाने में सहायता मिली होगी जिसका हो सकता है कि आरम्भ में कम विश्वास हो। इससे उससे जो प्रभु करने जा रहा था, परेशान होने से बचाकर रखा गया हो सकता है। अचानक तेज़ और रंगबिरंगी चीज़ों को देखने से हो सकता है कि वह स्तब्ध रह जाता। इसके अलावा चरणों में उसकी चंगाई का होना उन आश्चर्यकर्मों की सामर्थ पर और भी ज़ोर देता है जो एकदम से हुए थे यानी एक ही बार या एक ही बात से। इस ढंग में केवल कुछ क्षण लगे थे।

नासरत में सामर्थ का काम करने से इनकार करने से थोड़ी देर बाद ही, यीशु गलील की

झील पार एक अन्यजाति इलाके में गया और वहां उसने बड़े काम किए। इन लोगों ने बड़ा विश्वास दिखाया, जबकि नासरत के लोगों ने वास्तव में कोई विश्वास नहीं दिखाया था। नासरत के लोग इतने ढीठ थे कि उन्होंने विश्वास करने से इनकार कर दिया, परन्तु यह आदमी, चाहे पहले इसका विश्वास कम था, अब विश्वास करने को तैयार था। लगा कि उसके मित्रों को जो उसे यीशु के पास लेकर आए थे कोई संदेह नहीं है।

अंधे आदमी की यह चंगाई उद्धार पाए हुओं और खोए हुओं यानी विश्वास करने को तैयार लोगों और जो विश्वास नहीं करते, में बुनियादी अंतर को दिखाती है। लूका 13:24 में सच्चाई के खोजी की कार्यवाहियों के लिए दो शब्द हैं। पहला शब्द 13:23 में (ἀγωνίζομαι, *agōnizomai*, ''यत्न करना'') है जो कि (ἀγών, *agōn*) से लिया गया है जिससे अंग्रेज़ी शब्द ''agony'' का स्रोत है। यह शब्द सच्चाई तक पहुंचने के लिए बड़े संघर्ष का संकेत देता है। सचमुच में लोगों के लिए तंग मार्ग में प्रवेश करने के लिए प्रयास करना आवश्यक है। अगले वाक्यांश में क्रिया शब्द (ζητέω, *zēteō*, ''चाहना'') है, जो कि कम कठोर शब्द है। अन्य शब्दों में, विश्वासी ''यत्न करने वाले'' स्वर्ग में जाएंगे, जबकि ''लापरवाह चाहने वाले'' इसे खो सकते हैं!

आयत 26. उसने उसे यह कहकर घर भेजा, ''इस गाँव के भीतर पाँव भी न रखना।'' यीशु नहीं चाहता था कि उसे केवल चमत्कार करने वाले के रूप में जाना जाए, इस कारण उसने उस आदमी से कहा कि वह अपनी चंगाई के बारे में दूसरों को न बताए। उसे सीधे घर जाने को कहा गया। यह उस आदमी के परिवार के प्रेम भरे लगाव के स्पर्श की झलक भी हो सकती है, और न केवल यीशु के अपनी सामर्थ की प्रसिद्धि को काम करने की बात। यह आश्चर्यकर्म और 7:31–37 वाले बहरे की चंगाई का आश्चर्यकर्म दोनों केवल मरकुस में मिलते हैं।

''लोग मुझे क्या कहते हैं?'' (8:27–30)[18]

[27]यीशु और उसके चेले कैसरिया फिलिप्पी के गाँवों में चले गए। मार्ग में उसने अपने चेलों से पूछा, ''लोग मुझे क्या कहते हैं?'' [28]उन्होंने उत्तर दिया, ''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला; पर कोई कोई एलिय्याह और कोई कोई भविष्यद्वक्ताओं में से एक भी कहते हैं।'' [29]उसने उनसे पूछा, ''परन्तु तुम मुझे क्या कहते हो?'' पतरस ने उसको उत्तर दिया, ''तू मसीह है।'' [30]तब उसने उन्हें चिताकर कहा कि मेरे विषय में यह किसी से न कहना।

इस हवाले वाली घटना को मरकुस की पुस्तक में नये मोड़ के रूप में देखा जाता है। रोनल्ड जे. कर्नाघन ने टिप्पणी की है, ''8:27 में आरम्भ होकर 10:52 में समाप्त होने वाला भाग शुभ समाचार मरकुस की प्रस्तुति में यीशु की मृत्यु की सामग्री का सबसे एकाग्र संग्रह है।[19] वास्तव में इस क्षण को सुसमाचार के मरकुस के विवरण का चोटी का क्षण कहा गया है।

लूका 9:18 कहता है कि इस बार यीशु अकेला प्रार्थना कर रहा था, चाहे उसके चेले उसके साथ थे। उसके मसीहा होने का तथ्य एक बड़ा प्रकाशन था। उसका परमेश्वर का मसीहा होना उसकी सेवकाई के दौरान जाना जाने के लिए सब सच्चाइयों में से बड़ा था। इस समय के बाद से, उन्हें उसके दुःख सहने का कारण समझ में आना आवश्यक था। इसके अलावा जो बात उसके

मसीहा होने पर लागू होती थी वही उनके शिष्य होने पर भी लागू होनी थी। उसके पीछे चलते रहने वालों को वैसे ही दु:ख उठाना पड़ना था (देखें 2 तीम. 3:12)।

आयतें 27, 28. स्पष्टतया यह घटना गलील के बाहर **कैसरिया फिलिप्पी** जिले के पास, हरमोन पहाड़ के निकट घटी। कैसरिया फिलिप्पी को प्राचीन पैन (जो कि ''सारे'' के लिए यूनानी शब्द है और इसे ''पेनियास'' भी कहा जाता है) वाली जगह पर फिर से बसाया गया था। अग्रिप्पा द्वितीय ने इसका नाम बदलकर ''नीरोनियास'' (नीरो के लिए) रख दिया।[20] हेरोदेस फिलिप्पुस (हेरोदेस महान का पुत्र जिसने 4 ई.पू. से 34 ई. तक शासन किया) ने इसे खुद के सम्मान और सत्ताधीश कैसर सम्मान में फिर से बसाया था। इसे झील पर बसे कैसरिया से अलग करने के लिए उसने इसे ''कैसरिया फिलिप्पी'' नाम दे दिया। उसने सफेद संगमरमर का सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया था जहां पर कैसर को देवता के रूप में सम्मानित किया गया था। इतना उपयुक्त था कि यहां पर परमेश्वर का पुत्र पतरस के उस अच्छे अंगीकार से प्रकाश में आए कि वह ईश्वरीय मसीह, सर्वशक्तिमान, सर्वोच्च और सबका सच्चा परमेश्वर है।

मार्ग में उसने अपने चेलों से पूछा, ''लोग मुझे क्या कहते हैं?'' यीशु ने पहले लोगों का विचार पूछा। कई उसे पेटू, पियक्कड़, और पापियों का मित्र बताते थे जो उसे उनकी नज़रों में निकम्मा बना देता था (मत्ती 11:19; लूका 7:34)। चरित्र हनन की ये बातें निश्चय ही शास्त्रियों और फरीसियों की बातें मानने के कारण होती होंगी। मसीह के पीछे चलने के लिए सामान्य लोगों के विचारों से ऊपर उठना आवश्यक है। बाइबल में संसार के अनुरूप होने को गलत कहा गया है (देखें रोमियों 12:2; 2 कुरि. 6:14; 1 यूहन्ना 2:15)। राज्य उन शख्त लोगों के लिए है जो निडरता से सच्चाई का साथ देते हैं।

प्रेरितों ने उन अधिकतर अनुकूल विचारों के बारे में बताया जो उन्होंने उसके बारे में सुने थे: **''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला; पर कोई कोई एलिय्याह और कोई कोई भविष्यद्वक्ताओं में से एक भी कहते हैं।''** सबसे पहले यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले का नाम लिया गया। हेरोदेस अंतिपास का मानना था कि यीशु जी उठा यूहन्ना था (6:14-16)। अपराध-बोध से ग्रस्त दुष्ट शासन को लगा कि यूहन्ना उसे सताने के लिए मरे हुओं में से जी उठा है। उसका दोषी विवेक उसे इस प्रकार से सोचने के लिए विवश करता होगा, और जीवनभर उसके मन पर यह एक बड़ा बोझ बना रहा होगा।

''एलिय्याह'' की वापसी की पेशनगोई मलाकी 4:5 में की गई थी। बहुत से यहूदी इसका अर्थ यह निकालते थे कि एलिय्याह सचमुच में फिर से आएगा। यीशु ने समझाया कि एलिय्याह यूहन्ना में आ चुका था (मत्ती 17:12, 13)। लूका 1:17 में जकर्याह को दिए गए अपने प्रकाशन में जिब्राइल ने कहा था कि यूहन्ना का आना, ''एलिय्याह की आत्मा और सामर्थ में'' होना था। मत्ती 11:14 में यीशु ने समझाया कि भविष्यद्वाणी का अर्थ एलिय्याह के सामर्थ में यूहन्ना का आना था और उसने आगे कहा, ''चाहो तो मानो।'' यदि लोग परमेश्वर का काम करने में यूहन्ना को एलिय्याह का आत्मिक उत्तराधिकारी मान लेते, तो वे आसानी से मान सकते थे कि वह ''जंगल में एक पुकारने वाले का एक शब्द'' था। जिसकी पेशनगोई मलाकी में की गई थी (देखें मत्ती 3:3; मरकुस 1:3)। अधिकतर लोग केवल शाब्दिक अर्थों में सोच सकते थे जिस कारण वे भविष्यद्वाणी के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ पाए।

दूसरा विचार यिर्मयाह के होने का था। इस नबी का उल्लेख सुसमाचार के समानांतर विवरण में केवल मत्ती 16:14 में है, मरकुस में नहीं है। अपोक्रिफा (अप्रामाणिक बाइबल) में 2 एसड्रास 2:18 में भविष्यद्वाणी की गई कि यिर्मयाह और यशायाह दोनों आएंगे परन्तु अपोक्रिफा के इस विचार को न तो मसीह और न प्रारम्भिक कलीसिया के द्वारा कभी स्वीकार किया गया और न बढ़ावा दिया गया।

आयत 29. यीशु ने पूछा, **''परन्तु तुम मुझे क्या कहते हो?''** वह जानकारी नहीं माग रहा था, बल्कि अपने चेलों से उनके निष्कर्ष खुलकर बताने को कह रहा था। वह जो उन्हें पता चला था और जो दूसरे कह रह थे, उसके बीच अंतर पर ज़ोर दे रहा था।

पतरस ने उसको उत्तर दिया, ''तू मसीह है।'' उसके प्रश्न से वैसा ही अंगीकार निकलकर आया जैसा चेलों ने पहले किया था, जिसका वर्णन मत्ती 14:33 में है। नतनएल ने कहा था कि वह ''परमेश्वर का पुत्र'' है (यूहन्ना 1:49)। दूसरों के यीशु से फिर जाने के बाद पतरस ने एक अंगीकार किया था जो यहां किए गए अंगीकार के जैसा ही था: ''... 'हे प्रभु, हम किसके पास जाएँ? अनन्त जीवन की बातें तो तेरे ही पास हैं; और हम ने विश्वास किया और जान गए हैं कि परमेश्वर का पवित्र जन तू ही है''' (यूहन्ना 6:68, 69)।

मत्ती 16:16 में पतरस ने दूसरे प्रेरितों के साथ यीशु को ''जीवते परमेश्वर का पुत्र'' घोषित किया था। इस अंगीकार का स्पष्ट अर्थ यह था कि यीशु ही ''मसीह'' या ''ख्रिस्तुस'' है। ''मसीहा'' का यह शब्द उसका कोई नाम नहीं है बल्कि पद है, जिसका अर्थ है ''परमेश्वर का अभिषिक्त या मसह किया हुआ।''[21]

मरकुस में हमारे प्रभु से जुड़ी यह गवाही है:

1:1 – पुस्तक के परिचय में कहा गया है, ''परमेश्वर के पुत्र यीशु मसीह के सुसमाचार।''

1:11 – यीशु के बपतिस्मे के बाद परमेश्वर ने ऊंचे स्वर से यह कहते हुए उससे बात की, ''तू मेरा प्रिय पुत्र है। ...''

3:11; 5:7 – दुष्टात्माओं द्वारा उसकी पहचान बताई गई।

8:29 में ''परमश्वेर का पुत्र'' का न होना कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि पुस्तक में यीशु की पहचान को अच्छी तरह स्थापित किया गया है।

रोमियों 1:4 बताता है कि हम उसे ''प्रभु और मसीह'' क्यों कह सकते हैं क्योंकि वह वही है जो ''पवित्रता की आत्मा के भाव से मरे हुओं में से जी उठने के कारण सामर्थ्य के साथ परमेश्वर का पुत्र ठहरा है।''

यहूदियों का मानना था कि जब मसीहा आएगा तो वह अलौकिक होगा। उदाहरण के लिए उन्हें उसके संसार को नष्ट करके इसे नये सिरे से बनाने, परमेश्वर के लोगों का बदला लेने की उम्मीद की।[22] इसके अलावा उनका विचार था कि सारा संसार यहूदी मत में आ जाएगा; यह उनकी राष्ट्रवादी उम्मीद का हिस्सा था। यही कारण था कि वे किसी को परिवर्तित करने या ''यहूदी मत में लाने'' (προσήλυτος, *prosēlutos*) के संसार में जाते थे (देखें मत्ती 23:15)। दूसरी ओर सभी अन्यजातियों का विनाश, बहुत से यहूदियों में आनन्द करने का कारण रहा होगा।[23]

यीशु को अपने राज्य के बारे में यहूदियों और अपने प्रेरितों को नये सिरे से सिखाना आवश्यक था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जब रोम को कर चुकाने और उनके मूर्तिपूजक शासकों के प्रति आदर दिखाते हुए रोम के आगे समर्पण करने के उसके संदेश को सुनना, तो बहुतों ने उसे ठुकरा दिया। यहूदियों को विशेषकर यह विश्वास दिखाना कठिन था; 66 इ. तक गलील के अधिकतर लोग रोम का हिंसक ढंग से इतना विरोध करते थे कि वे अपने दमनकारियों के साथ सुलह की बात सोच भी नहीं सकते थे। 66-73 ई. के यहूदी विद्रोह में पहला दंगा गलील में आरम्भ हुआ। इससे युद्ध के आरम्भ होने का आधिकारिक समय आरम्भ हो गया और उस युद्ध का अंत मसादा के विद्रोहियों की पराजय के साथ हुआ।[24]

आयत 30. तब उसने उन्हें चिताकर कहा कि मेरे विषय में यह किसी से न कहना। इस आयत में यहां तक, किसी भी प्रेरित को वास्तविक समझ नहीं थी कि यीशु के मसीह होने में क्या बात थी; जिस कारण उनसे कहा गया कि अभी न सिखाएं। यीशु इसे रोकने की काफ़ी कोशिश कर रहा था। जब तक वह मरे हुओं में से जी नहीं उठा तब तक उसने पतरस, याकूब और यूहन्ना तक को भी दूसरों भी रूपांतर के बारे में न बताने को कहा (9:9)। तब वे इसे अच्छी तरह से नहीं बता सकते थे या समझा सकते थे। सुनने वाले हर व्यक्ति ने मसीहा की कल्पना वैसी ही कर लेनी थी जैसी वह चाहता। लगता है कि आम तौर पर यीशु नहीं चाहता था कि इस बात का पता चले कि वह मसीहा है जब तक वह क्रूस पर मरकर जी नहीं उठा, सम्भवतया इसलिए कि उसकी मृत्यु से उसके मसीहा होने के दावों पर संदेह की छाया डालती थी। जैसा कि 8:31, 32 में संकेत है, पतरस को भी इन दावों की समझ नहीं आई।[25]

''हे शैतान, मेरे सामने से दूर हो'' (8:31-33)[26]

[31]तब वह उन्हें सिखाने लगा कि मनुष्य के पुत्र के लिये अवश्य है कि वह बहुत दुःख उठाए, और पुरनिए और प्रधान याजक, और शास्त्री उसे तुच्छ समझकर मार डालें, और वह तीन दिन के बाद जी उठे। [32]उसने यह बात उनसे साफ-साफ कह दी। इस पर पतरस उसे अलग ले जाकर झिड़कने लगा, [33]परन्तु उस ने फिरकर अपने चेलों की ओर देखा, और पतरस को झिड़क कर कहा, ''हे शैतान, मेरे सामने से दूर हो; क्योंकि तू परमेश्वर की बातों पर नहीं, परन्तु मनुष्यों की बातों पर मन लगाता है।''

अपनी सेवकाई में यहां से यीशु अपने चेलों को अपनी आने वाली मृत्यु की चेतावनी देने लगा। 8:31-10:52 वाले भाग में जिसे ''गलील से यहूदा तक'' नाम दिया जा सकता है, मुख्य विचार यही विषय है।[27] मनुष्य के पुत्र की मृत्यु के विशेष तीन हवाले मरकुस में ही मिलते हैं। पहला हवाला यहां 8:31 में है, जबकि दूसरे दो हवाले 9:31 और 10:33, 34 में हैं। ऐसा लगता है कि अगली कार्यवाहियां यीशु के अपने विचारों को यरूशलेम की यात्रा की ओर मोड़ने पर हुई (9:30, 31)।

आयत 31. पुरनिए और प्रधान याजक, और शास्त्री जो कि यरूशलेम के प्रमुख अगुवे थे, उसे फंसाने के प्रयास में आर्खिरियुस जल्द ही मिल जाने वाले थे। ''प्रधान याजकों''[28] का उल्लेख मरकुस में 14 बार हुआ है। यह ''पुरनिये'' जिनकी बात यीशु ने की, निश्चय ही

महासभा के सत्तर सदस्यों में से थे। ''प्रधान याजक'' (ἀρχιερεύς, *archiereus*) सबसे बड़ा अगुआ था और मसीह पर मुकद्दमा करने वालों में से सबसे अधिक दोषी बना (मत्ती 26:57)।

अब क्रूस की त्रासदी निकट आ गई थी यानी यीशु की घड़ी बड़ी नज़दीक आ पहुंची थी![29] ऐसा नहीं है कि यह त्रासदी केवल आनी ही थी बल्कि यह आनी आवश्यक थी। यीशु को मालूम था कि भविष्यद्वाणी का पूरा होना आवश्यक है। मरकुस 9:12 कहता है, ''परन्तु मनुष्य के पुत्र के विषय में यह क्यों लिखा है कि वह बहुत दु:ख उठाएगा, और तुच्छ गिना जाएगा?'' यीशु को पता था कि उसे **तुच्छ** जाना (ἀποδοκιμάζω, *apodokimazō*) जाना था। मूलतया उसने यहूदी अगुओं की ''जांच में फेल'' हो जाना था। यह ईश्वरीय योजना का भाग था कि वह हमारे लिए बहुत दु:ख उठाए। यशायाह 53:3-11 उस बात का नबूवती विवरण है जो मसीह ने पापियों के लिए सहना था।

मनुष्य के पुत्र वाक्यांश सम्भवतया दानिय्येल 7:13 से लिया गया। यह अभिव्यक्ति ''परम प्रधान के पवित्र लोगों'' से जुड़े ऊंचे किए गए व्यक्ति के लिए है (दानिय्येल 7:18)।[30] इस बड़ी भविष्यद्वाणी में मनुष्य के पुत्र को एक मनुष्य के रूप में दिखाया गया जिसने **मार डाले** जाना था।

यीशु ने प्रेरितों को अच्छी खबर भी दी कि उसने **तीन दिन के बाद जी उठ**ना था। यह शब्दावली केवल मरकुस में है; मत्ती और लूका में ''तीसरे दिन'' है (मत्ती 16:21; 17:23; 20:19; लूका 9:22)। समय की यह गणना दिन के एक भाग को पूरा दिन मानने के यहूदी ढंग को दर्शाती है। (एक दिन में रात और अगला दिन होता था।) यीशु ने दोनों अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल किया जो सकता है, या सुसमाचार के लेखकों ने अपने अपने तरीके से उसकी बात की व्याख्या की हो सकती है, क्योंकि दोनों का अर्थ लगभग एक ही है। हमारे लिए ''तीन दिन के बाद'' का अर्थ ''चौथे दिन'' होगा, परन्तु यहूदी गणना के अनुसार ऐसा नहीं था।

आयत 32. उसने यह बात उनसे साफ-साफ कह दी। बाद में यरूशलेम में जो कुछ हुआ उससे यीशु को कोई आश्चर्य नहीं था, परन्तु जो कुछ उसने कहा उससे उसके चेले बिल्कुल हैरान थे। क्रूस पर उसके मरने के साथ साथ उसके ''बहुत से दु:ख'' उठाने की योजना बनी हुई थी। वह संसार में पिता की इच्छा को पूरा करने के लिए आया था। फिलिप्पियों 2:8 कहता है, ''मनुष्य के रूप में प्रगट होकर अपने आप को दीन किया, और यहां तक आज्ञाकारी रहा, कि मृत्यु हां, क्रूस की मृत्यु भी सह ली।'' इब्रानियों 10:5-7 इस का स्पष्ट कारण बताता है कि यीशु को एक देह दी गई थी:

> इसी कारण वह जगत में आते समय कहता है, ''बलिदान और भेंट तू ने न चाही, पर मेरे लिए एक देह तैयार की। होम-बलियों और पाप-बलियों से तू प्रसन्न नहीं हुआ। तब मैंने कहा, 'देख, मैं आ गया हूं, पवित्र शास्त्र में मेरे विषय में लिखा हुआ है, ताकि हे परमेश्वर, तेरी इच्छा पूरी करूं।''[31]

यीशु ने प्रेरितों से अपनी आने वाली मृत्यु की बात करते समय ''साफ़-साफ़'' (παρρησία, *parrēsia*) बता दिया, जिसका अर्थ है ''खुलकर'' ''बिना किसी लाग लपेट के।'' अब वह दृष्टांतों की या अस्पष्ट भाषा का इस्तेमाल नहीं कर रहा था क्योंकि अब उसके लिए

इसका समय नहीं था। मरकुस 2:20 में उसने दूल्हे के अलग किए जाने के रूपक का इस्तेमाल किया। यूहन्ना 2:19-21 में उसने मन्दिर के विनाश के एक और रूपक का इस्तेमाल किया:

> यीशु ने उनको उत्तर दिया, ''इस मन्दिर को ढा दो, और मैं इसे तीन दिन में खड़ा कर दूँगा।'' यहूदियों ने कहा, ''इस मन्दिर के बनाने में छियालीस वर्ष लगे हैं, और क्या तू उसे तीन दिन में खड़ा कर देगा?'' परन्तु उसने अपनी देह के मन्दिर के विषय में कहा था।

महासभा ने यीशु के दावों को सुनकर उसे ठुकरा देना था। यीशु ने मुर्दों में से जी उठकर उन्हें गलत ठहरा देना था। चेलों को अभी यीशु के उनके लिए मरने की बात समझ में नहीं आनी थी, इस कारण उनके उसके जी उठने की बात को समझना कठिन था। मारथा की तरह (यूहन्ना 11:24), उनके लिए, ''अंत के दिन'' होने वाले पुनरुत्थान को स्वीकार करना आसान था, परन्तु इन प्रेरितों को भी जिन्होंने उसके हाथों से इतने आश्चर्यकर्म होते देखे थे, मुर्दों में उसके जी उठने की उम्मीद नहीं होगी।

इस दिन के बारे में **पतरस** को यीशु से कुछ कहना था, जिस कारण वह **उसे अलग लगाकर झिड़कने लगा**। रकुस के विवरण में इसे पूरा वैसे नहीं दिखाया गया है जैसे मत्ती 16:22 में दिखाया गया है: ''पतरस उसे अलग ले जाकर झिड़कने लगा, 'हे प्रभु, परमेश्वर न करे! तेरे साथ ऐसा कभी न होगा।''' अनजाने में पतरस शैतान की ही इच्छा की बात कर रहा था (8:33)। उसका इरादा अच्छा था और वह यीशु से जीवन पर अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखने को कह रहा था।[32] वह यीशु को समझा रहा था, ''इतने निराशावादी मत बनो!'' परन्तु संसार की सारी सकारात्मक सोच भी इन तथ्यों को बदल नहीं सकती थी। कई बार हमें नकारात्मक या कठिन सच्चाइयों का सामना करना आवश्यक होता है।

आयत 33. पतरस को यकीन नहीं आ रहा था इस कारण वह चोटी (अंगीकार करने) से, गहराई में डूब गया। उसे लगा कि उसे परमेश्वर के पुत्र को सलाह देने की समझ है! पतरस ने यीशु को अकेले में ले जाकर चतुर बनने की कोशिश की थी (8:32), परन्तु यीशु ने उसे बनने नहीं दिया। **उस ने फिरकर अपने चेलों की ओर देखा, और पतरस को झिड़क कर कहा।** पतरस को डांटने के लिए यीशु दूसरे चेलों की ओर मुंह किया।

यीशु ने पहले पतरस से कहा, ''**हे शैतान, मेरे सामने से दूर हो।**'' जब हम शैतान के मन की बात करते हैं तो हम उसके हाथों का खिलौना होते हैं, चाहे हमारे इरादे अच्छे हों। ऐसे मामलों में, हमें वैसे ही डांट की आवश्यकता होती है जो यीशु ने पतरस को दी। मत्ती 16:23 में ठोकर खाने के अपराध या अवसर के लिए σκάνδαλον (*skandalon*) स्कैंडेलोन शब्द का इस्तेमाल हुआ है। यदि यीशु पतरस की सलाह को मान लेता तो उसने ''ठोकर खानी'' थी। ''दुष्ट'' के लिए यूनानी शब्द διάβολος (*diabolos*) के बजाय ''शैतान'' के लिए Σατανᾶς (*Satanas*) शब्द का इस्तेमाल इब्रानी और अरामी प्रभाव का एक और संकेत है।

इसके बाद यीशु ने पतरस से कहा, ''**क्योंकि तू परमेश्वर की बातों पर नहीं, परन्तु मनुष्यों की बातों पर मन लगाता है।**'' ''मनुष्य की बातों पर मन [लगाने]'' का अर्थ साफ़ तौर पर एक सामर्थी संसारिक मसीहा होने की इच्छा करना था, क्योंकि यहूदियों और शैतान की यही इच्छा थी। शैतान पतरस के मन में आ गया था और उसने उसके मन में ऐसे विचार डाले

थे; मसीह की बातों को नकारकर वह शैतान की सोच में फंस गया था।

पतरस ने यीशु के मिशन के वास्तविक उद्देश्य को नहीं माना। एक अर्थ में यीशु का उत्तर था, ''तू चाह रहा है कि मैं संसार के तौर तरीकों पर चलकर शानो शौकत से और समारोहपूर्वक सांसारिक राजा बन जाऊं; परन्तु यह शैतान का तरीका है, परन्तु मेरा नहीं।'' उसे स्वर्गीय योजना का पता था और संसार की सोच से उसे कोई फर्क नहीं पड़ना था। पतरस को डांटने में दूसरे लोग भी लग गए हो सकते हैं; परन्तु यीशु ने बहुत कड़ाई से पतरस को सुधार दिया, ताकि बाकी के लोग उसके विरुद्ध बोलने की हिम्मत न करें। वह उन सब को यह समझाना चाहता था कि जो कुछ उसने कहा था वह पिता की इच्छा थी और इसे पूरा होना आवश्यक था।

अनन्तकालिक सम्मान से पहले विनम्रता और परमेश्वर की इच्छा को मानना होना आवश्यक है। पतरस को यह सबक मिल गया और उसे इसे बार-बार बताया:

> इस कारण तुम मगन होते हो, यद्यपि अवश्य है कि अब कुछ दिन के लिये नाना प्रकार की परीक्षाओं के कारण दु:ख में हो; और यह इसलिये है कि तुम्हारा परखा हुआ विश्वास, जो आग से ताए हुए नाशवान सोने से भी कहीं अधिक बहुमूल्य है, यीशु मसीह के प्रगट होने पर प्रशंसा, और महिमा, और आदर का कारण ठहरे। उससे तुम बिन देखे प्रेम रखते हो, और अब तो उस पर बिन देखे भी विश्वास करके ऐसे आनन्दित और मगन होते हो, जो वर्णन से बाहर और महिमा से भरा हुआ है; और अपने विश्वास का प्रतिफल अर्थात आत्माओं का उद्धार प्राप्त करते हो (1 पतरस 1:6-9; देखें 4:12-19; 5:10)।

मरकुस 8:33 के साथ खत्म होने वाला यह भाग सुसमाचार के विवरण के ''पहले भाग'' के अंत को दर्शाता है, क्योंकि यीशु ने अब अपना मुंह यरूशलेम में क्रूस की ओर फेर दिया।

''मनुष्य अपने प्राण के बादले क्या देगा'' (8:34-38)[33]

[34]उसने भीड़ को अपने चेलों समेत पास बुलाकर उनसे कहा, ''जो कोई मेरे पीछे आना चाहे, वह अपने आपे से इन्कार करे और अपना क्रूस उठाकर, मेरे पीछे हो ले। [35]क्योंकि जो कोई अपना प्राण बचाना चाहे वह उसे खोएगा, पर जो कोई मेरे और सुसमाचार के लिये अपना प्राण खोएगा, वह उसे बचाएगा। [36]यदि मनुष्य सारे जगत को प्राप्त करे और अपने प्राण की हानि उठाए, तो उसे क्या लाभ होगा? [37]मनुष्य अपने प्राण के बदले क्या देगा? [38]जो कोई इस व्यभिचारी और पापी जाति के बीच मुझ से और मेरी बातों से लजाएगा, मनुष्य का पुत्र भी जब वह पवित्र दूतों के साथ अपने पिता की महिमा सहित आएगा, तब उस से भी लजाएगा।''

आयत 34. इस आयत में, मरकुस में पहली बार क्रूस का उल्लेख हुआ है। अपराधियों को मृत्यु दण्ड देने के इस ढंग का इस्तेमाल करने का यहूदियों के पास कोई कानूनी अधिकार नहीं था, इस कारण आवश्यक था कि यीशु को दण्ड देने में रोमी राज्यपाल की भागीदारी हो। **भीड़ को अपने चेलों समेत पास बुलाकर** यीशु ने कहा, ''**जो कोई मेरे पीछे आना चाहे, वह अपने आपे से इन्कार करे और अपना क्रूस उठाकर, मेरे पीछे हो ले।**'' वह अपना इनकार करने के

मार्ग पर अगुआई करने वाला था।

सांसारिक राज्य तथा सांसारिक आदर की इच्छा के बजाय व्यक्ति को अनन्तकालिक शिष्यता के मार्ग पर चलने की इच्छा करनी चाहिए, परन्तु वह है क्या? अपना इनकार करने का अर्थ केवल कुछ सुखों का त्याग करना नहीं है। यह जीने का ढंग यानी अपने आपका त्याग करना है। यीशु यह नहीं कह रहा कि उसका चेला बनने के लिए शारीरिक रूप में दु:ख उठाना आवश्यक है। शरीर में दु:ख उठाना कई बार आवश्यक हो सकता है; संसार के अलग-अलग भागों में हर युग में शहीद हुए हैं (देखें 2 तीम. 3:12)। जब हम यीशु की तरह अपनी दिलचस्पियों से बढ़कर परमेश्वर की दिलचस्पियों को देखते हैं, तो इस कारण दु:ख उठाना बढ़ सकता है।

परन्तु यह समर्पण प्रतिदिन होना आवश्यक है जिसका अर्थ यह हुआ कि यह सचमुच के क्रूस को उठाना नहीं है। लूका 9:23 में यीशु ने कहा, ''यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो अपने आपे से इनकार करे और प्रतिदिन अपना क्रूस उठाए हुए मेरे पीछे हो ले।'' हमारे प्रभु के धर्म को यदि सप्ताह में केवल एक दिन माना जाए तो यह और प्रसिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत शिष्य होना निरन्तर, और प्रतिदिन की वचनबद्धता है।

आयत 35. हमारे प्रभु ने प्राण खाने की बात की: **''क्योंकि जो कोई अपना प्राण बचाना चाहे वह उसे खोएगा, पर जो कोई मेरे और सुसमाचार के लिये अपना प्राण खोएगा, वह उसे बचाएगा।''** 8:36 की तरह ''प्राण'' के लिए ψυχή (*psuchē, स्यूक*[34]) का अर्थ ''जीवन'' भी हो सकता है (देखें मत्ती 16:26)। पुराने नियम में ''प्राण'' (נֶפֶשׁ, *nepesh, नेपेश*) और नये नियम में ψυχή (*psuchē, स्यूक*) के वास्तव में कई अर्थ हैं, का अर्थ '' *जीवन का श्वास; महत्वपूर्ण बल* जो शरीर में जान डालता है'' है, और इसका इस्तेमाल व्यक्ति के साथ साथ पशु के लिए हो सकता है।[35] यह शब्द किसी जीवित, सांस लेने वाले के लिए, मुख्यतया मनुष्य पर लागू होता है, चाहे पुराने नियम में पशुओं के भी soul (प्राण) होना बताया गया है।[36] इसके विपरीत πνεῦμα (*pneuma*, ''आत्मा'') मनुष्यजाति के लिए उचित और अविनाशी प्राण है।

आयतें 36, 37. इन आयतों में यीशु ने दो प्रश्न पूछे: **''यदि मनुष्य सारे जगत को प्राप्त करे और अपने प्राण की हानि उठाए, तो उसे क्या लाभ होगा? मनुष्य अपने प्राण के बदले क्या देगा?''** ''अपने प्राण की हानि'' का अर्थ दण्ड के कारण इसे त्याग देना है। यीशु के कहने का अर्थ यहां यह हो सकता है, ''यदि कोई अपने अनन्त प्राण को खो देता है, तो इसे किस चीज़ से वापस खरीद सकता है? पूरा संसार यह कीमत नहीं चुका सकता! इसके बदले में कुछ नहीं दिया जा सकता!'' इन आयतों में *psuchē* शब्द बार-बार दोहराया गया है। NASB और KJV में जहां ''soul'' है वहीं ASV में 8:35 में ''life'' है। ''Life'' जीवन बेहतर अनुवाद लगता है और नये नियम में इसी शब्द का इस्तेमाल हुआ है।

परन्तु किसी के ''जीवन'' पर आत्मिक या सनातन अर्थ में भी विचार किया जा सकता है, इस कारण यह ''प्राण'' का समानार्थी है। यह मसीह की रहस्यमयी या विरोधाभासी भाषा का एक उदाहरण है, क्योंकि कई बार उसकी बात लगता है कि पहले कही गई बात का उल्ट है, जबकि दोनों में गम्भीर सच्चाइयां बताई गई होती हैं।[37] जिन्होंने मसीह के लिए वास्तव में अपने प्राण खोए हैं निश्चय ही उन्हें महिमा में वे वापस मिल लाएंगे।

हम सब जानते हैं कि मरने पर हम इस जीवन की किसी भौतिक वस्तु को अपने साथ नहीं ले जा सकते। परन्तु जो प्राण हमारे पास है वे सदा तक रहेंगे और यदि हम मसीह के वफ़ादार हैं तो अनन्तकालिक आनन्द में या यदि आज्ञा नहीं मानते हैं या मरने तक वफ़ादार नहीं रहते तो सदा के लिए दुर्दशा में रहेंगे।

आयत 38. प्रभु ने यह कहते हुए बात खत्म की, ''**जो कोई इस व्यभिचारी और पापी जाति के बीच मुझ से और मेरी बातों से लजाएगा, मनुष्य का पुत्र भी जब वह पवित्र दूतों के साथ अपने पिता की महिमा सहित आएगा, तब उस से भी लजाएगा।**'' ''इस व्यभिचारी और पापी जाति'' पीछे हट गए इस्राएलियों की बात करने के पुराने नियम के नबूवती ढंग याद दिलाता है, जिनके लिए कहा गया कि परमेश्वर से दूर जाकर उन्होंने आत्मिक व्यभिचार किया है। कर्नाघन ने इस वाक्यांश को ''इस्राएल की सम्भावनाओं का यदि कोई हों, सबसे निराशजनक आकलन'' कहा है।[38]

यीशु ने ''मुझ से और मेरी बातों से लजाएगा'' अभिव्यक्ति का भी इस्तेमाल किया। यदि हम यीशु से और उसकी बातों से लजाते हैं तो हमें अनन्तकालिक अपमान झेलना पड़ेगा। क्या हम वास्तव में इन दोनों को अलग कर सकते हैं? यदि मसीह के प्रति हम ऐसा व्यवहार दिखाते हैं तो उसके अपनी पूरी महिमा में आने पर हमें अपमानित होना पड़ेगा। व्यभिचारपूर्ण और पाप पूर्ण जीवन जीना प्रभु का इनकार करना ही है।

यदि इस जीवन में हम परमेश्वर का पुत्र होने के रूप में यीशु का अंगीकार करने से हैं तो बाद में वह हमारा इनकार करेगा (मत्ती 10:32, 33)। इसके विपरीत हमारा अब का किया हुआ अंगीकार निश्चय ही आनन्द का कारण बनेगा ''जब वह पवित्र दूतों के साथ अपने पिता की महिमा में आएगा।'' अपने प्रिय प्रभु और उसके दूतों की सारी सेनाओं को देखना सचमुच में महिमा से भरा होगा।

प्रासंगिकता

यीशु की अपेक्षाएं (8:1-10)

यीशु कुछ देर तक दिकापुलिस में रहा होगा (देखें 7:31)। जितना हो पाया वह अन्यजातियों को उपदेश दे रहा था और प्रेरितों को व्यक्तिगत निर्देश दे रहा था। इन वचनों की पृष्ठभूमि में (8:1-10), एक बड़ी भीड़ तीन दिनों से यीशु के पीछे रही थी। लोग उसके व्यक्तित्व, सामर्थ और संदेश से इतने मोहित हो गए होंगे कि उन्होंने उसे छोड़ा नहीं। वे यीशु की बातें सुनने में इतने मंत्रमुग्ध हो गए कि उन्होंने प्रतिदिन की रोटी की अपनी निजी आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं दिया।

यीशु के सामने भूख का संकट खड़ा हो गया था। प्रेरितों से कुछ भी करने के लिए कहे बिना, यीशु ने उन्हें बताया कि उसे उन लोगों पर तरस आता है जो तीन दिनों से उसके साथ थे और उनके पास खाने को कुछ नहीं था (8:2, 3)।

प्रेरितों ने वहां उपस्थिति लोगों के बारे में नहीं सोचा था जिस कारण उनके दिमाग में इस परिस्थिति में निपटने की कोई योजना नहीं थी। उन्होंने यीशु से पूछा, ''यहाँ जंगल में इतनी रोटी

कोई कहाँ से लाए कि ये तृप्त हों?'' (8:4)। यीशु कई बार हमें ऐसे ही पाता है जब हमने अपने आस पास के लोगों की कंगाली के बारे में सोचा नहीं होगा। हमने कोई संकटकाल नहीं देखा है। अंत में जब संकट इतना बड़ा हो जाता है और हमारा ध्यान उसकी ओर जाता है, तो हम केवल इतना कह पाते हैं, ''यह नहीं हो सकता। इस समस्या को कोई नहीं सुलझा सकता!''

प्रेरितों से कोई सहायता न मिलने पर यीशु मुश्किल का हल निकालने लगा। एक अर्थ में उसने कहा, ''जो कुछ हमारे पास है चलो उसी से शुरू करते हैं। हमारे बीच किसी के पास कितनी रोटियां हैं?'' (देखें 8:5)। प्रेरितों ने अपने अपने थैलों में देखा और उन्हें सात रोटियां मिल गईं। उनके पास कुछ छोटी मछलियां भी थीं जो शायद लोगों की ओर से दी गई थीं।

यीशु ने भीड़ को खिलाने का जिम्मा ले लिया (8:6, 7)। जो भोजन यीशु ने उपलब्ध करवाया वह वहां उपस्थित हर व्यक्ति के लिए पर्याप्त था। किसी को भी रहने नहीं दिया गया था। बाद में बचे हुए टुकड़ों को उठा लिया गया और इनसे सात टोकरे भर गए (8:8) जो इतने बड़े थे जितने बड़े टोकरे में दमिश्क में पौलुस को ''शहरपनाह पर से लटकाकर उतारा गया'' था (देखें प्रेरितों 9:25)।

पहले यीशु ने स्त्रियों और बच्चों के अलावा पांच हज़ार आदमियों की भीड़ को खिलाया था (मरकुस 6:33-44)। वह घटना इस खिलाने के जैसे ही थी परन्तु इससे अलग थी, परन्तु दोनों ही मामलों में खिलाने के बाद यीशु ने लोगों को भेज दिया। ये आश्चर्यकर्म सार्वजनिक थे और इन्हें आसानी से गलत समझा जा सकता था। लोग यह कहते हुए कि ''यदि तू हमारा सांसारिक राजा बन जाए तो हम हर जगह तुम्हारे पीछे चलेंगे,'' उनके प्रति प्रतिक्रिया देने का प्रलोभन आ सकते थे। यीशु इस प्रकार का राजा बनने के लिए नहीं आया था। इसलिए आश्चर्यकर्म की प्रकृति और परिस्थिति के कारण, यीशु के लिए लोगों को भेजना और खुद किसी दूसरी जगह पर चले जाना आवश्यक था।

चार हज़ार लोगों को खिलाने के इस आश्चर्यकर्म के विलक्षण पहलुओं में से एक यह है कि यीशु ने मानवीय तत्व से कैसे निपटा। जिस प्रकार से उसने इस घटना को अंजाम दिया उससे हमें जीवन और सेवा के वे महत्वपूर्ण सबक मिलते हैं जिन्हें हम खोना नहीं चाहते। यीशु के कामों में भीड़ को खिलाने में शिष्य होने की जिम्मेदारियां साफ़ दिखाई देती हैं। इन जिम्मेदारियों में हम ''यीशु की अपेक्षाएं'' के महत्वपूर्ण विषय को देख सकते हैं। यीशु अपने चेलों से क्या करवाने की अपेक्षा रखता है?

1. वचन से संकेत मिलता है कि *यीशु ने अपने चेलों से यह सोचने की अपेक्षा की* कि क्या किया जाए। यीशु ने अपने चेलों को कोई आज्ञा नहीं दी, न ही उसने उनसे कोई प्रश्न पूछा। उसने केवल एक बात की जिसमें संकेत शामिल था। उसने उन्हें बताया कि इन लोगों को जो भूख से परेशान थे, देखकर उसे कितना तरस आ रहा था।

वह चाह रहा था कि ये लोग कोई योजना बताएं। खड़ी हुई भूख की समस्या के लिए क्या चेलों को सोचकर किसी समाधान पर नहीं पहुंचना चाहिए था?

क्या वह हमारे लिए वैसा ही नहीं करता? अपने ग्रेट कमीशन में उसने हमें केवल सामान्य आज्ञाएं दी। उसने हमें यह नहीं बताया कि कैसे जाना है, कार में, नाव में, जहाज़ पर या पैदल। उसने हमें यह नहीं बताया कि कब जाना है, युवावस्था में, जवानी में, अधेड़ उम्र में या बुढ़ापे

में। उसने हमें यह नहीं बताया कि उन जगहों पर जो हमने चुनी हैं जाने के लिए किन तरीकों का इस्तेमाल करना है। ये बातें उसने हमारे ऊपर छोड़ दीं। इसलिए वह हम से यह सोचने की अपेक्षा रखता है कि हमें क्या करना है। इसका अर्थ यह है कि वह चाहता है कि हम आस पास देखें, अपने संसार की परिस्थितियों का अनुमान लगाएं, उन तरीकों की समीक्षा करें जो दूसरों को सिखाने में प्रभावी हैं और काम के करने के लिए तर्कसंगत योजनाएं बनाएं। यीशु हम से क्या अपेक्षा रखता है? वह हम से अपेक्षा रखता है कि हम सोचें।

2. वचन संकेत देता है कि *यीशु अपने चेलों से उसे याद रखने की अपेक्षा रखता था* जो उसने पहले किया था। कुछ सप्ताह पहले उसने ऐसा ही एक आश्चर्यकर्म किया था, परन्तु साफ़ है कि चेलों को याद नहीं था कि उसने इसे कैसे और क्यों किया था।

आयत 4 हमारे दिलों के एक तार को छेड़ती है: ''उसके चेलों ने उसको उत्तर दिया, 'यहाँ जंगल में इतनी रोटी कोई कहाँ से लाए कि ये तृप्त हों?''' (8:4)। प्रेरित ऐसा कैसे कह सकते थे? वे मसीह अर्थात परमेश्वर के पुत्र की ओर देख रहे थे, जिसने कुछ ही देर पहले जौ की पांच रोटियों और दो मछलियों के साथ (स्त्रियों और बच्चों के अतिरिक्त) पांच हज़ार पुरुषों को खिलाया था। इस घटना के बाद उन्होंने यीशु को गलील की झील पर चलते हुए अपनी नाव की ओर आते देखा था। इसके थोड़ी देर बार उन्होंने उसे दुष्टात्मा से ग्रस्त एक आदमी को चंगाई देते और दुष्टात्माओं को उसी इलाके में सूअरों के एक झुण्ड में भेजते हुए देखा था। परन्तु ऐसा लगा जैसे उनके ध्यान में इनमें से कोई घटना नहीं थी। वे यीशु को ऐसे जवाब दे रहे थे जैसे उन्होंने उसका कोई आश्चर्यकर्म कभी न देखा हो।

यीशु की सामर्थ सर्वशक्तिशाली सामर्थ है इस कारण समस्या चाहे जो भी क्यों न हो वह हर परिस्थिति से निपट सकता है। ऐसा वह तब भी कर सकता था, और आज भी कर सकता है! हमें इसका पता होना और इस पर विश्वास होना चाहिए है। यीशु के लिए कोई भी समस्या बड़ी समस्या नहीं है। जिसने सब कुछ बनाया वह केवल एक स्पर्श के साथ रेत में डुबकी लगाने की तरह बड़ी आसानी से हमारी स्थितियों को देख सकता है।

क्या हम अपनी समस्याओं को ऐसे देखते हैं जैसे हमने यीशु को कभी काम करते न देखा हो? यदि यीशु कल हमारे साथ वफ़ादार था, तो क्या वह आज हमारे साथ वफ़ादार नहीं होगा? चिंता क्यों करते हो? जो आज हमारे साथ वफ़ादार है क्या वह कल हमारे साथ वफ़ादार नहीं होगा?

यदि हमें यह याद नहीं है कि परमेश्वर ने क्या किया है तो हम उसकी महिमा सही ढंग से नहीं कर पाएंगे। यदि हम उसके ईश्वरीय प्रबन्ध को याद नहीं रखते तो बहुत सम्भावना है कि हम अपने सामने पेश आने वाली खराब परिस्थितियों का सामना न कर पाएं। यीशु हम से क्या अपेक्षा रखता है? वह हम से याद रखने की अपेक्षा रखता है।

3. वचन यह संकेत देता है कि यीशु ने उस काम में जो वह कर रहा था *अपने प्रेरितों से योगदान की अपेक्षा की*। हां उसने आश्चर्यकर्म किए। जिसमें उसने उस भोजन के रूप में जो भीड़ को खिलाया जाना था रोटी तोड़ी और मछलियां दीं, परन्तु उसने उस भोजन को वहां उपस्थित हर किसी को बांटने के लिए चेलों को बुलाया। धन्यवाद देने और रोटियों और मछलियों को बढ़ाने के बाद, वह ''अपने चेलों को देता गया कि उनके आगे रखें, और उन्होंने लोगों के

आगे परोस दिया'' (8:6)।[39] फिर उसने मछलियों पर आशीष दी और ''उन्हें भी लोगों के आगे रखने की आज्ञा दी'' (8:7)।

यीशु के प्रेरित एक प्रकार की प्राथमिक पाठशाला में थे। जल्द ही उन्होंने आरम्भिक कलीसिया के अगुवे बनना था। उन्होंने पृथ्वी पर के उसके जीवन और सेवकाई का विस्तार बनना था। उसका उन्हें इन लोगों की सेवा करने को कहना उसकी अच्छी तैयारी थी, जो बाद में होने वाला था।

लीडरशिप का तैयार होना साफ़ दिखाई देता है: यीशु से प्रेरित, आरम्भिक कलीसिया, बाद की कलीसिया तक। सेवा की इस कड़ी में अपनी बारी आने पर हम इस संसार में यीशु के हाथ और पांव बन गए हैं। सेवकाई का उसका काम संसार में बढ़ता जाएगा, परन्तु वह काम आपके और मेरे द्वारा होना आवश्यक है।

उसकी योजना में हम देखते हैं कि उसने जंगल में इस खाने पर उसने भीड़ को कैसे खिलाया। पौलुस के शब्दों में हम उसे दोबारा देखते हैं: ''और जो बातें तू ने बहुत गवाहों के सामने मुझ से सुनी है, उन्हें विश्वासी मनुष्यों को सौंप दे; जो दूसरों को भी सिखाने के योग्य हों'' (2 तीमु. 2:2)। इसी प्रकार से आरम्भिक कलीसिया के जीवन में हम देखते हैं:

> सो हे मेरे प्यारो, जिस प्रकार तुम सदा से आज्ञा मानते आए हो, वैसे ही अब भी न केवल मेरे साथ रहते हुए पर विशेष करके अब मेरे दूर रहने पर भी डरते और कांपते हुए अपने अपने उद्धार का कार्य पूरा करते जाओ। क्योंकि परमेश्वर ही है, जिस ने अपनी सुइच्छा निमित्त तुम्हारे मन में इच्छा और काम, दोनों बातों के करने का प्रभाव डाला है (फिलि. 2:12, 13)।

यीशु हम से क्या अपेक्षा रखता है? वह हम से उसमें जो वह कर रहा है, भाग लेने की अपेक्षा रखता है।

निष्कर्ष: यीशु ने जिस प्रकार से अपने प्रेरितों को काम पर लगाया, वैसे ही उसने हमें काम पर लगने के लिए बुलाया है। वह चाहता है कि हम पृथ्वी पर उसकी सेवकाई को आगे बढ़ाएं। उसने सुसमाचार को हमारे हाथों में देना चुना है। हम उसे निराश करेंगे या ऊंचा उठाएंगे?

जिस प्रकार से यीशु ने इस खाने का संचालन किया उससे हमें अपनी स्वीकृति के लिए ये ज़िम्मेदारियां दिखाई देती हैं। (1) हम और अधिक चौकस रहें। लोगों के जीवनों में भूख को देखने के लिए हम उसकी आंखें हैं। हर कठिनाई हमारे लिए अवसर बन सकती है। (2) लोगों को अपने जवाब में हम उसी से आरम्भ करें जो हमारे पास है। यीशु के हाथ में थोड़ी सी चीज़ बहुत लोगों के पास जा सकती है। (3) आरम्भ करने के लिए हम सब कुछ ठीक होने की प्रतीक्षा न करें। यीशु ने सात रोटियों से आरम्भ कर दिया और कुछ मछलियां बाद में लीं। (4) ये यीशु नये नियम के समय में आश्चर्यकर्म के द्वारा अपनी सामर्थ को दिखा सकता था, तो वह आज अपनी सामर्थ को ईश्वरीय प्रबन्ध के द्वारा दिखा सकता है। हमें अपनी सहायता के लिए यीशु की ओर देखना आवश्यक है। (5) लोगों की सेवा करते हुए हमें उसमें भरोसा रखना आवश्यक है। हो सकता है कि उसकी योजना उससे जो हम सोच रहे हैं, अलग हो, पर उसकी योजना ही बढ़िया योजना होती है। (6) हम यह सुनिश्चित करें कि कोई भी छूटने न पाए। यीशु हमें हर

किसी की सहायता करने के लिए बुलाता है। (7) हम अपने निकट के उन लोगों को बुलाएं जो हमारी सहायता कर सकते हैं। लाक्षणिक रूप में कहें तो उनके पास कुछ मछलियां हो सकती हैं। (8) हम अपने संसाधनों को दूर तक ले जाने के लिए वचनबद्ध हों। हमें टुकड़ों को बचाना चाहिए। (9) याद रखें कि यीशु ने अकेले अपना काम करने के लिए नहीं चुना है। (10) जो उसने कल किया था उसे याद रखें, ताकि आज हम उसकी महिमा कर सकें।

शायद यशायाह 6:8 को परमेश्वर की बुलाहट और उसके जवाब को अपने ऊपर लागू करना सही हो: ''मैंने सुसमाचार की पुस्तक में से यीशु की आवाज को मुझ से यह कहते हुए सुना, 'मैं किस को भेजूं, हमारी ओर से कौन जाएगा? मैं तो स्वर्ग में चला गया हूं, परन्तु पृथ्वी पर मेरा मिशन अधूरा है। मैं इसे पूरा करने में अपनी सहायता के लिए इससे कह सकता हूं?''' तब हमारा जवाब हो: ''हे प्रभु यीशु, मैं यहां हूं। मुझे भेज! यदि तू हमें भेजे तो हम जाकर तेरे काम को करेंगे।'' जवाब में यीशु हम से कहता है, ''जाओ और लोगों को बताओ कि मैं संसार में आया हूं, संसार के लिए मरा हूं, उनके लिए जो मेरी आज्ञा मानते हैं, स्वर्ग में मकान तैयार करने के लिए चला गया हूं। लोगों के पास जाओ तब तक मत रूको जब तक हर व्यक्ति मेरे सुसमाचार को सुन नहीं लेता। यदि तुम मेरे लिए यह करते हो तो मैं तुम्हारे साथ-साथ चलूंगा और तुम्हें अपने मिशन को पूरा करने की सामर्थ दूंगा'' (देखें यशा. 6:9; मत्ती 28:19, 20)।

तीहरा ठुकराया जाना (8:11-13)

यीशु गलील की झील के पश्चिम की ओर गया होगा। वह दलमनूता में गया था, जो कि तिबेरियास के निकट गलील की झील के पश्चिम में स्थित होगा।

फरीसियों (मत्ती 16:1 में सदूकियों का भी उल्लेख है) ने यीशु से उन्हें स्वर्ग की ओर से कोई चिह्न देने को कहा। उन्होंने पृथ्वी पर उसके आश्चर्यकर्मों को देखा था, परन्तु उन्होंने उन आश्चर्यकर्मों को उसके मसीहा होने के दावों की पुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं माना। जो आश्चर्यकर्म यीशु ने किए थे उनसे उन्हें यकीन नहीं आया था कि वह परमेश्वर का मसीहा है। उनके लिए उसके आश्चर्यकर्म कमज़ोर और शक्तिहीन लगे; ये धार्मिक अगुवे और बड़े अचम्भे करने को कह रहे थे।

यीशु ने उन्हें बताया कि वे हवाओं का रुख़ देकर मौसम का हाल तो बता सकते हैं परन्तु मसीहा को आने के चिह्नों को नहीं पढ़ सकते। उसने कहा, ''सांझ को तुम कहते हो, 'मौसम अच्छा रहेगा, क्योंकि आकाश लाल है,' और भोर को कहते हो, 'आज आंधी आएगी, क्योंकि आकाश लाल और धूमिल है''' (मत्ती 16:2, 3)। यीशु ने उन्हें यह कहकर डांट लगाई, ''तुम आकाश के लक्षण देखकर उसका भेद बता सकते हो, पर समयों के चिह्नों का भेद क्यों नहीं बता सकते?'' (मत्ती 16:3)।

मरकुस ने चर्चा के बीच में कहीं, शायद आरम्भिक गिनती के बिल्कुल बाद, यीशु को ''अपनी आत्मा में आह'' भरते दिखाया (8:12)। जब लोगों ने उसके वचन को ग्रहण करके उसमें विश्वास किया तो उसका मन आनन्द से भर गया, परन्तु जब उन्होंने उसे ठुकरा दिया तो उसका मन दुःखी हुआ। अनुवाद हुए शब्द ''आह भरकर'' को ''कराहते हुए'' भी कहा जा सकता है। परमेश्वर का पुत्र अविश्वासी मन वाले लोगों के द्वारा उससे पूछे गए प्रश्न पर कराहा।

अपने कराहने के बाद यीशु ने इन धार्मिक अगुओं के लिए कड़े दण्ड की घोषणा की। उसने कहा, ''इस युग के बुरे और व्यभिचारी लोग चिह्न ढूंढ़ते हैं'' (मत्ती 16:4)। उनकी विनती से यीशु को फरीसियों और सदूकियों दोनों के जो उसके पास आए थे कठोर मनों की बुराई का पता चला।

अपनी बातचीत को खत्म करते हुए यीशु नबी की भूमिका में आ गया: ''मैं तुम से सच कहता हूँ कि इस समय के लोगों को कोई चिह्न नहीं दिया जाएगा'' (8:12; देखें मत्ती 16:4)। मत्ती 16:4 हमारे प्रभु के निर्णय में एक वाक्यांश ''योना के चिह्न को छोड़'' जोड़ देता है। यह यीशु, के पुनरुत्थान के प्रतीक के रूप में है। दूसरा ''बड़ा'' चिह्न उन्हें केवल उसके जी उठने का मिलना था।

विश्वास करने के इच्छुक किसी के लिए भी यकीन दिलाने के लिए यीशु के आश्चर्यकर्म काफ़ी थे। यदि किसी ने यीशु और उसके आश्चर्यकर्मों को ठुकरा दिया तो उसने यीशु के मरे हुओं में से जी उठने पर भी उस पर विश्वास नहीं लाना था! यीशु चाहे जो भी कर लेता उस व्यक्ति का यकीन नहीं आना था।

सबसे बड़ी त्रासदी जिसकी कोई कल्पना कर सकता है, वह यीशु को ठुकराना है। फरीसियों और सदूकियों के इस मामले में यीशु को ठुकराने में और भी कई त्रासदियां थीं।

1. *जानबूझकर अज्ञानता की त्रासदी।* यदि फरीसी यीशु की सच्चाई की खोज में होते, तो उन्हें यह मिल जानी थी। यदि वह यीशु के पास खुले मनों से आए होते, तो उसके आश्चर्यकर्मों, आचरण तथा संदेशों से यकीन हो जाना था।

आत्मिक मामलों में, मंशा निर्णायक होती है। फरीसी गलत मंशा लेकर आए थे। वे यीशु को फंसाने के इरादे से, उसकी गलती पकड़ने की कोशिश करने, उस पर दोष लगाने का कोई कारण ढूंढ़ने के लिए आए थे। वे यीशु से सच्चाई जानने के लिए नहीं आए थे। उन्होंने उस सच्चाई को जिसे वह लेकर आया था जानबूझकर ठुकराया और उससे पीछा छुड़ाने की इच्छा से आक्रामक रूप में नकार दिया।

उन आश्चर्यकर्मों को जो यीशु दिखा रहा था, देखकर पहले उन्होंने उसकी सामर्थ को बालज़बूल की सामर्थ बताया था। वे उसकी सामर्थ को नकार नहीं पाए, इसलिए उन्हें यह दलील देनी पड़ी कि वह बुराई के राजकुमार शैतान के द्वारा यह काम कर रहा था।

सच्चाई यह है कि वे यीशु को नहीं चाहते थे। वह सच्चाई का मूर्त रूप था और यदि वे यहूदिया को सच्चाई से भर जाने की अनुमति देते तो उनका रुतबा, शक्ति, सम्पत्ति और प्रभाव छिन जाना था। इसलिए उन्होंने उस वास्तविक ज्ञान को जो यीशु उनके पास लेकर आया था, नकार देना चुना। वे विद्रोहपूर्ण ढंग से कह रहे थे, ''हम उसी के साथ रहेंगे जिसे हम मानते हैं, चाहे हमारे विश्वास गलत साबित हो चुके हों।''

2. *हाथ से जाने दिए गए अवसर की त्रासदी।* हम यह कहने की परीक्षा में पड़ सकते हैं, ''यदि मैं उसे देख पाता, उसे सुन पाता और उसके आश्चर्यकर्मों को देख पाता तो मैंने विश्वास कर लेना था। मैंने समर्पित मन वाले उस अद्वितीय क्षण का लाभ उठा लेना था।''

यीशु के इस धरती पर होने के समय उसकी उपस्थिति में होने का सौभाग्य निश्चय ही संसार के अब तक का और आने वाले समय का सबसे बड़ा सौभाग्य था। हमें इससे भी बड़ा सौभाग्य

मिलेगा जब हम अनन्तकाल में उसके साथ होंगे, परन्तु इस जीवन में पृथ्वी पर उसके रहने के समय वहां होना सबसे बड़ा अवसर, सबसे बड़ा आदर, सबसे बड़ा आनन्द था, जो पृथ्वी पर कभी किसी को मिला हो।

इन लोगों के लिए यानी इन फरीसियों और सदूकियों के लिए जो अपने जीवन धार्मिक सेवा लिए दे रहे थे, उसके साथ बात करने और उसकी पृथ्वी की सेवकाई को देखने का अवसर उनकी अभिलाषाओं और सेवकाइयों के पूरा होने का अवसर होना चाहिए था। यह सुनहरी पल उनके मनों की प्रेरणा, संकल्प और स्वप्नों का पूरा होना चाहिए था।

उन्होंने उस बहुमूल्य समय का जो उन्हें परमेश्वर के पुत्र के साथ होने का मिला था, क्या किया? उन्होंने अनुग्रह के इस दान को ऐसे फेंक दिया जैसे यह शैतान की ओर से दिया गया हो।

3. *टूटी हुई संगति की त्रासदी।* फरीसियों और सदूकियों को केवल सच्चाई को जानने का अवसर ही नहीं मिला था बल्कि उन्हें यीशु की जो कि मसीह है, पृथ्वी पर की संगति में होने का सौभाग्य भी मिला था। वह उनके सामने बैठता था, उनके सामने चलता था और उन्हें देखता था।

प्रेरितों को यीशु से सीखने का जब भी अवसर मिला उन्होंने इसका लाभ उठाया। यीशु इन लोगों से प्रेम करता था और वे उससे प्रेम करते थे। परमेश्वर के ईश्वरीय पुत्र यीशु के साथ यह संगति सबसे शुद्ध और सबसे सार्थक संगति है जो किसी को मिल सकती है।

फरीसियों और सदूकियों ने यीशु के साथ दोस्ती को ठुकरा दिया क्योंकि वे उसे नापसंद करते थे। जैसे ही समय मिला, उन्होंने उसे मार डाला।

बड़े चिह्न की उनकी मांग की यीशु की प्रतिक्रिया बड़ी आह थी। सच्चाई को जानने के लिए, उसे ढूंढ़ने के बजाय फरीसियों और सदूकियों ने उसे परखना चाहा। यीशु उन्हें अनन्त जीवन दे रहा था, परन्तु उनकी दिलचस्पी उसे दण्ड देने और मार डालना सुनिश्चित करने में थी जाए। यीशु को उनके ठुकराने का अर्थ ईश्वरीय मसीह के साथ टूटी हुई संगति था।

निष्कर्ष: यीशु को ठुकराना सबसे बड़ी त्रासदी है। इन आयतों वाली घटना में जानबूझकर अज्ञानता में उसकी सच्चाई से दूर जाने, ऐसा विद्रोह जिससे यीशु की पृथ्वी की सेवकाई के लाभ मिलने का अवसर गंवा दिया और जानबूझकर परमेश्वर के पुत्र के साथ संगति के बजाय बुराई के साथ संगति को चुनने की पसन्द शामिल थी।

वचन का अंत यहां एक दु:खद टिप्पणी के साथ होता है: ''और वह उन्हें छोड़कर फिर नाव पर चढ़ गया और पार चला गया'' (8:13)। यीशु के जाने को संक्षेप में बताया गया है, परन्तु यह कितना गम्भीर और दोष लगाने वाला है। यीशु चला गया क्योंकि इस गांव में वह उस ईश्वरीय काम को नहीं कर पाया जिसे करने के लिए वह संसार में आया था।

परमेश्वर के अनुग्रह की अपनी सीमाएं हैं। उसके प्रेम की हद है। वह हर किसी को बचाने के लिए आया, परन्तु बचा वह केवल उन्हीं को सकता है जो उसके लिए अपने मनों को खोलते हैं।

सुसमाचार के चारों विवरणों में यीशु हमारे पास आया है। क्या हम यह कहेंगे, ''मुझे और सबूत चाहिए''? यदि हमारे कहने का अर्थ यह है कि ''हमें उससे जो बाइबल में लिखा गया है, अधिक सबूत चाहिए'' तो हमारे लिए यह कहना पड़ेगा, ''एकमात्र प्रमाण जो तुम्हें और मिलेगा वह समय के अंत में मरे हुओं का जी उठना है।'' पक्की बात है कि जब वह प्रमाण दिया

जाएगा तब हर कोई विश्वास कर लेगा, परन्तु तब बहुत देर हो चुकी होगी। प्रमाण को मानकर विश्वास करने का समय हमारे लिए अभी है। हमारी सुनहरी घड़ी आ चुकी है और हमें इसका लाभ लेना आवश्यक है।

यीशु और हमारी समस्याएं (8:14-21)

8:14-21 में लगभग आठ की आठ आयतें अपने प्रेरितों के साथ यीशु की हुई चर्चा को दिखाती हैं। इस चर्चा का आरम्भ दलमनुता से गलील की झील के दूसरी ओर जाते हुए नाव में हुआ होगा, परन्तु उनके किनारे तक पहुंचने तक यह बातचीत खत्म नहीं हुई होगी। यीशु की सेवकाई जल्दी जल्दी खत्म होने वाली थी, इस कारण वह अपने प्रेरितों को उन कठिनाइयों के लिए तैयार करने में अधिक से अधिक समय दे रहा था, जो उनके सामने आने वाली थीं। यीशु उन्हें आने वाले खतरों के बारे में समझाना चाहता था। यह सुनिश्चित करते हुए कि वे मज़बूत सेवक बनें जो वह उन्हें बनाना चाहता था, वह उन्हें सावधान कर रहा था।

एक विशेष समस्या जिस पर यीशु ने ज़ोर दिया, फरीसियों, सदूकियों (जिसका उल्लेख मत्ती 16:1 में है), और हेरोदियों की शिक्षाएं थीं। उसने उनके बुरे प्रभाव को खमीर के जैसा बताते हुए प्रतीकात्मक भाषा में इन शिक्षाओं की चुनौती की बात की। प्रेरितों को बातचीत के प्रतीकात्मक अर्थ की समझ तब तक नहीं आई जब तक वे झील के पूर्व की ओर बैतसैदा जूलियास के निकट नहीं पहुंचे। यीशु की इस बातचीत में तीन समस्याओं की गई बात की जो राज्य में अगुवे बनने वाले लोगों के समूह में किसी न किसी प्रकार आ जाएंगी।

इस पृष्ठभूमि वाली समस्याएं कभी न कभी हर किसी पर आ सकती हैं। जो कमज़ोरियां यीशु ने अपने प्रेरितों में देखीं वही कमज़ोरियां वह हमारे अंदर भी देखता होगा। आइए इस बातचीत की समीक्षा करते हुए इसे वफ़ादारी से उसके राज्य में सेवा की तैयारी करते हुए, हम अपने ऊपर लागू करें।

1. *भूल जाने (या लापरवाही) की समस्या।* 8:14-21 के आरम्भ में प्रेरितों की एक छोटी सी चूक पर ध्यान दिलाया गया है, ''चेले रोटी लेना भूल गए थे, और नाव में उनके पास एक ही रोटी थी'' (8:14)।

भूल जाना हमें परेशानी में डाल सकता है, जैसे इसने इस सफ़र पर इन लोगों को डाला। प्रेरितों का आगे का सोचकर सफ़र के लिए सामान साथ न लेना एक बड़ी भूल थी। उनके पास उनके बीच में केवल एक रोटी थी।

जहां तक हम जानते हैं, प्रेरितों का आगे का सोचकर उस काम के लिए जिसे वे करने जा रहे थे, तैयार न होने के परिणाम प्रेरितों और यीशु को भुगतने पड़े थे। यीशु ने इस अवसर पर उन्हें उनकी लापरवाही से बचाने के लिए आश्चर्यकर्म नहीं किया। यदि उसने किया हो तो कम से कम तो हमारे पास इसका कोई रिकॉर्ड नहीं है। यीशु ने देह में उनके साथ होने वाले रूप में अपने चमत्कारी शक्ति का इस्तेमाल निजी संतुष्टि, निजी रक्षा, निजी लाभ या निजी सुख के लिए नहीं किया। उसने कई दिनों तक भूखा रहने के बाद जंगल में शैतान की परीक्षाओं से अपने आपको छुड़ाने के लिए भी अपनी चमत्कारी शक्ति का इस्तेमाल नहीं किया था।

प्रेरितों की इस गलती ने उन्हें काम में और काम से पहले और काम के बाद ध्यान से योजना

बनाने की आवश्यकता को दिखा दिया। कहते हैं कि ''इलाज से परहेज़ अच्छा।'' क्या हम भी यह नहीं कह सकते, ''तौबा से तैयारी अच्छी''? यह पता चलने पर हम काम पूरा करने के लिए बिना तैयारी के आए हैं, हमें समझ में आता है कि यदि हम इसके लिए तैयार की होगी तो हमारा काम और कितना प्रभावशाली ढंग से और इसमें कितना आनन्द आता। कम से कम इस अवसर पर प्रेरितों को और समझदारी की आवश्यकता थी; और अधिकतर मामलों में हमें भी होती है।

2. *झूठी शिक्षाओं (या बुरे प्रभावों) की समस्या।* यह वह मुख्य विषय था जिस पर यीशु इस बातचीत में अपने प्रेरितों के साथ चर्चा करना चाहता था। उसने अपने चेलों को फरीसियों, सदूकियों और हेरोदियों की झूठी शिक्षाओं के विषय में चौकस किया। ''चौकस रहो!'' शब्द में ताकीद दिखाई देती है। मरकुस 8:15 जहां यह कहता है कि ''फरीसियों के खमीर और हेरोदेस के खमीर से चौकस रहो,'' वहीं मत्ती 16:6 में ''फरीसियों और सदूकियों ...'' है। हमारे प्रभु ने ''खमीर'' शब्द के नीचे तीन प्रकार के शिक्षक बता दिए: फरीसी, सदूकी और हेरोदी।

पुराने और नये नियम में, ''खमीर'' शब्द का इस्तेमाल आम तौर पर बुराई या विनाश को दर्शाने के लिए प्रतीकात्मक रूप में हुआ है। यहां पर यीशु इन धार्मिक और राजनैतिक शिक्षकों की शिक्षाओं के विनाश करने वाली होने की बात करने के लिए इसका इस्तेमाल कर रहा था।

फरीसी लोग परम्परावादी थे। वे अपनी परम्पराओं को परमेश्वर के वचन के जितना ही महत्व देते थे। जब भी इनका टकराव परमेश्वर के वचन के साथ हो जाता, वे अपनी अपनी परम्पराओं को ही मानते थे। सदूकी लोग तर्कवादी थे। वे स्वर्गदूतों, चमत्कारों, परलोक या सामान्य पुनरुत्थान को नहीं मानते थे। वे पुराने नियम की केवल पहली पांच पुस्तकों को मानते थे। हेरोदी लोग हठवादी थे। वे हेरोदी राजवंश के विशेष समर्थक बनकर रोमी साम्राज्य के नेतृत्व को मानते थे।

हमारा प्रभु शिक्षकों के इन तीनों समूहों में से किसी के साथ नहीं हो सकता था। हर कोई गलती की अलग पद्धति को दर्शाता था। सच्चाई होने का कारण (देखें यूहन्ना 14:6), वह तीनों का विरोध करता था।

गलत शिक्षा के लिए प्रेरितों को अपने जवाब में यीशु के प्रति अटल था। उसके शब्दों ''चौकस रहो'' का अर्थ उनके लिए ज़बर्दस्त चेतावनी देना था। चाहे वह उनके ही साथ था, पर उसे पता था कि इन तीनों समूहों की गलत शिक्षाएं कई प्रकार से उनके मनों पर हमला कर सकती हैं। उसने उन्हें गलत शिक्षा से प्रभावित होने से मना करने को कहा।

''प्रभाव'' को ध्यान से समझना चाहिए। यह शब्द भलाई या बुराई की उस शक्ति को दर्शाता, जो केवल शिक्षकों की ओर से नहीं बल्कि हर प्रकार के लोगों की ओर से निकलती है। हर शिक्षक, हर व्यक्ति से यह शक्ति निकलती है। प्रभाव के मर्म स्पर्शी प्रवाह की चार विशेषताएं हैं: यह साफ़-साफ़ सुनाई देता है, आम तौर पर अदृश्य होता है, अत्यधिक शक्तिशाली है और बेहिसाब रहता है। यह हम से दूसरों पर जाता है और दूसरों से हम पर आता है। यह सूक्ष्म, सहज, शांत और या तो शक्ति देने वाला या नाश करने वाला होता है। हम कभी भी इसके किसी न किसी रूप के बिना नहीं होते। जब हम बाहर लोगों के बीच में होते हैं तो हम प्रभाव के उनके दायरे का भाग होते हैं। हम दूसरों को प्रभावित करते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं।

परन्तु हम झूठे शिक्षकों से बिगाड़े जाने से कैसे बच सकते हैं। प्रेरित बिगड़ सकते थे तो

हम भी बिगड़ सकते हैं। यीशु ने कहा, ''चौकस रहो!'' वह चाहता है कि हम झूठी शिक्षाओं से सावधान हो जाएं। हम झूठे शिक्षकों से दूर रहें और अपने दिमाग में उनकी शिक्षाओं को न आने दें।

3. *अविश्वास (या अधर्म) की समस्या।* पहले, जब यीशु ने प्रेरितों को झूठी शिक्षाओं के खमीर से सावधान किया था, तो ''वे आपस में विचार करके कहने लगे, हमारे पास रोटी नहीं है'' (8:16)। उन्हें लगा होगा कि यीशु उन्हें बहाने से उनके झील को पार करने के लिए जाने की सही ढंग से तैयारी न करने पर डांट रहा था।

8:17 में यीशु अपने प्रेरितों को प्रश्न पूछने लगा: उसने कहा, ''तुम क्यों आपस में यह विचार कर रहे हो कि हमारे पास रोटी नहीं?''; ''क्या अब तक नहीं जानते और नहीं समझते?''; ''क्या तुम्हारा मन कठोर हो गया है?'' यीशु उन्हें रोटी लाना भूल जाने के लिए बहाना नहीं बना रहा था बल्कि उन्हें इसकी चिंता करने के लिए डांट रहा था। उसने उन्हें बताया कि वे उस पर, जो उन्हें करना चाहिए था इतने शिकायती होकर उस में विश्वास की कमी को दिखा रहे हैं। यीशु चेलों के उस पर भरोसा न करने पर मन से दु:खी हुआ। आज जब हम उस पर भरोसा नहीं रख पाते, तो भी वह निराश होता होगा। परमेश्वर के पूरा हो चुके प्रकाशन के साथ, हमारे पास उन आरम्भिक चेलों से भी बढ़कर विश्वास करने का आधार है।

प्रेरितों को उसकी चुभती हुई डांट जारी रही जब उसने उन्हें 8:18-21 में और प्रश्न पूछ लिए। ''क्या आँखें रखते हुए भी नहीं देखते, और कान रखते हुए भी नहीं सुनते?''; ''और क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि जब मैं ने पाँच हज़ार के लिए पाँच रोटियाँ तोड़ी थीं तो तुम ने टुकड़ों की कितनी टोकरियाँ भरकर उठाईं?'' (इस पर उन्होंने उत्तर दिया, ''बारह टोकरियाँ''); ''और जब चार हज़ार के लिये सात रोटियाँ थीं तो तुम ने टुकड़ों के कितने टोकरे भरकर उठाए थे?'' (उन्होंने कहा, ''सात टोकरे''); इस पर उन्होंने उत्तर दिया, ''क्या तुम अब तक नहीं समझते?''

यीशु उन से उसके बारे में सोचने पर अपनी आंखों, कानों, और समझ का इस्तेमाल करने को कह रहा था। उसके कामों को देखने के लिए उनके पास आंखें थीं, उसकी बातों को सुनने के लिए कान और उसकी प्रतिज्ञाओं को ग्रहण करने के लिए दिमाग। यीशु को यह अस्वीकार्य था की उसके प्रेरितों के सामने उसमें विश्वास की कमी का संकट हो। ये प्रेरित उसे अच्छी तरह से जानते थे; फिर भी जब कोई समस्या आ जाती तो वे उसे उसकी सामर्थ के प्रकाश में से नहीं देख पाते थे।

यदि यीशु मौजूद है, तो चिंता की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह सोचना गलती है कि यीशु हमेशा हमें मज़बूत करने और छुड़ाने के लिए कोई आश्चर्यकर्म ही करेगा। उसने प्रेरितों को भीड़ को खिलाने में उसकी *सामर्थ* को याद करने और उस जानकारी का इस्तेमाल वर्तमान परिस्थिति के लिए करने की चुनौती दी। वह सर्वशक्तिमान मसीह है चाहे वह आश्चर्यकर्म करे या न। यदि यीशु मौजूद है, तो इतना ही काफ़ी है। जिस प्रकार से उसने कालांतर में अपनी सामर्थ को चमत्कारी ढंग से दिखाया था, वैसे ही अब वह उसी सामर्थ से ईश्वरीय प्रबन्ध के द्वारा काम करेगा।

निष्कर्ष: यीशु बड़ा तारणहार है, हमारे लिए वे समस्याएं चाहें बड़ी हों या छोटी। इस वचन में यीशु ने प्रेरितों को तीन चुनौती पूर्ण समस्याएं याद दिलाईं और वह तीनों समस्याओं का हल

था।

भूल जाने की समस्या के लिए, उसने कहा, ''इसकी चिंता मत करो। याद रखो, मैं यहां हूं।'' झूठी शिक्षा की समस्या के लिए उसने कहा, ''झूठी शिक्षाओं से सावधान रहो, और मेरी बात सुनो। दूसरी हर आवाज से बढ़कर मेरी आवाज को सुनो।'' वफ़ादारी की समस्या के लिए, उसने कहा, ''देखो कि मैं कौन हूं। तुमने मेरी सामर्थ को देखा है और तुम जानते हो कि मैं क्या कर सकता हूं। मुझ में पूरा भरोसा रखो। जब मैं तुम्हारे साथ होता हूं, तो तुम्हें किसी चीज़ की चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

यीशु चाहता है कि हम उसके व्यक्तिगत और वजूद के अनोखे प्रेम और सामर्थ को जमा कर लें। बाइबल में जब भी हम उसकी सामर्थ और प्रेम के बारे में पढ़ते हैं और उन पर विचार करते हैं, तो हमारे मनों में और हमारे ध्यान में वे बैठ जाते हैं। फिर जब हमारे सामने समस्याएं आती हैं, तो वे समस्याएं चाहे जैसी भी क्यों न हों, वे चाहता है कि हम उस पर भरोसा रखें। हमें किसी चीज़ की चिंता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हम जानते हैं कि अपनी उस योजना के अनुसार वह हमें हमारी समस्याओं के बीच में से देखता है। यदि हम सही ढंग से यीशु में भरोसा रखें तो हमारे बुरे से बुरे और अच्छे से अच्छे समयों में वह हमारा सब कुछ होगा।

यीशु की सामर्थ की ओर देखना (8:22-26)

यीशु और उसके प्रेरित एक छोटे से गांव बैतसैदा जुलियास में आए थे, जो कि गलील की झील के उत्तर की ओर था। एक अंधे आदमी को चंगाई के लिए यीशु के पास लाया गया था। उसके साथ आए लोगों ने यीशु से प्रार्थना की कि वह ''उसे छुए।'' यीशु पहले उस इलाके के पास आया था और उन्होंने इस बारे में सुना था। इस अर्थ में, उन्हें उसकी सामर्थ का पता था। उनका मानना था कि यदि यीशु उसे छू ही दे, तो यह आदमी फिर से बोलने देखने लग पड़ेगा।

एक अर्थ में, इस अंधे की चंगाई को उसके आश्चर्यकर्मों में सबसे शानदार माना जाता है क्योंकि यह धीरे-धीरे हुई। यीशु ने इस आश्चर्यकर्म को आंशिक से सम्पूर्ण तक ले जाते हुए दो चरणों में किया। कोई भी और आश्चर्यकर्म इस प्रकार नहीं हुआ।

यीशु ने इस आश्चर्यकर्म को ऐसे क्यों किया? वह इस आदमी के अंधेपन को एक शब्द से ठीक कर सकता था; परन्तु इस अवसर पर उसने एक के बजाय दो चरणों में इसे करना चुना। इस व्यक्ति को उसके चंगा करने के अलग होने का कारण बाइबल में नहीं दिया गया है। फिर भी यीशु के ईश्वरीय कार्य ने इस अंधे की पूर्ण चंगाई की। यीशु की यह तस्वीर उसे हमें उससे जो हमने पहले देखा है, उसके चरित्र की पुष्टि करते हुए और इसमें नये पहलुओं को दिखाते हुए अलग प्रकार में दिखाती है।

इस घटना को बताते हुए मरकुस अभी भी यहोवा के सेवक यीशु की विश्वसनीयता और सामर्थ को दिखा रहा था। रोमी सोच को ध्यान में रखते हुए शायद इस घटना में यीशु की सामर्थ का एक और विचार दिखाना चाह रहा था। यीश, में किस प्रकार की सामर्थ है?

1. इस अंधे को दी गई यीशु की ओर से दी गई चंगाई पाठक को यह संदेश देती है कि जो सामर्थ उसमें दिखाई गई वह *निजी सामर्थ* थी। यानी यीशु ही सामर्थ है। उसे कहीं ओर से सामर्थ लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि *वही* सामर्थ है। वह परमेश्वरत्व का दूसरा सदस्य

यानी सर्वशक्तिमान मसीह है। उसकी सामर्थ भीतरी है। वह बोलता है तो जीवन का आरम्भ हो जाता है, तारे चमकने लगते हैं और फूल खिलने लगते हैं। उसके शब्दों में उसकी सामर्थ आगे भी जाती है।

जिस सामर्थ को यीशु दिखा रहा था, उसका उसके द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली कार्यप्रणाली से कोई सम्बन्ध नहीं था। सर्वशक्तिमान सामर्थ होने के कारण, यीशु जैसे चाहता आश्चर्यकर्म कर सकता था।

हम कह सकते हैं कि उसने यह घोषणा करने के लिए कि वही सामर्थ है, इस अनोखे ढंग से आश्चर्यकर्म किया। उसे किसी निर्धारित ढंग से आश्चर्यकर्म करने की आवश्यकता नहीं थी। हर मामले में चंगाई यीशु के स्पर्श से ही आई। यीशु को छोड़ और किसी ने कभी इस प्रकार की सामर्थ नहीं दिखाई गई। परमेश्वरत्व के तीनों में से एक होने के कारण उसमें सारी सामर्थ है।

2. इस घटना से यीशु की सामर्थ को *कोमल सामर्थ* के रूप में दिखाया गया। बिजली गिरना पेड़ में दरार डाल सकता है, तूफ़ान की धमक से मकान गिर सकते हैं। परन्तु यीशु की सामर्थ में उसके व्यक्तित्व और अनुग्रह की कोमलता और करुणा दिखाई गई। जिन्हें उद्धार की उसकी सामर्थ मिली है, वे पौलुस के शब्द उधार लेकर कह सकते हैं, ''जिस तरह माता अपने बालकों का पालन-पोषण करती है, वैसे ही [उसके अनुग्रह] में रहकर कोमलता दिखाई है'' (1 थिस्स. 2:7)।

हम यह ध्यान दिए बिना नहीं रह सकते कि यीशु ने इस आदमी निजी तौर पर ध्यान दिया। मरकुस 8:23 कहता है, ''वह उस अंधे का हाथ पकड़कर उसे गाँव के बाहर ले गया।'' हो सकता है कि यीशु इस घटना से लोगों में उत्तेजना न बढ़ाना चाहता हो, जिस कारण उसने यह आश्चर्यकर्म एकांत में करना चुना। उस आदमी की आवश्यकताओं में कुछ ऐसा होगा जिस कारण यीशु को उसे चंगा करने के लिए एक ओर ले जाना पड़ा। हो सकता है कि वह आदमी विश्वासी न हो और उसे यह पता न हो कि यीशु उसके साथ क्या करने वाला है। यीशु ने उसे छूकर और उसकी आंखों पर नमी डालकर उसे संकेत दिया कि वह क्या करने वाला है।

3. इस घटना में, यीशु ने *अधिकारयुक्त सामर्थ* को दिखाया। जिस सामर्थ को हम देखते हैं वह यीशु के नियन्त्रण में थी। यह उसके आदेशों और निर्देशों से चलती थी। उसने इसे जैसे चाहा वैसे दिखाया और जब उसने चाहा तब उसे दिया।

मरकुस ने यीशु के इस आदमी की चंगाई का काम के बारे में बताते हुए विस्तार से उसके तरीके को बताया। (जो कि विशेषकर उसकी पुस्तक में है।) पहला चरण इस प्रकार से हुआ: ''और उसकी आँखों में थूककर उस पर हाथ रखे, और उससे पूछा, 'क्या तू कुछ देखता है?' उस ने आँख उठा कर कहा, 'मैं मनुष्यों को देखता हूँ; वे मुझे चलते हुए पेड़ों जैसे दिखाई देते हैं''' (8:23, 24)।

यीशु ने उस आदमी की आंखों पर थूक की नमी डाली, जो शायद उसे उनके साथ देखने को कहने से पहले आराम और हल्का महसूस करवाने के लिए था। इस काम का चंगाई के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। उसकी आंखों पर लगाई गई नमी से उस आदमी को यह समझने में सहायता मिली होगी कि यीशु उसकी आंखों के लिए कुछ करने जा रहा है। इस आदमी को यीशु उस क्षण के लिए तैयार करते हुए जब उसने स्वाभाविक रूप में देखने लग पड़ना था उसके

साथ कोमलता से पेश आ रहा था।

इसके बाद बेशक उसने एक क्षण के लिए कोमलता से उस आदमी की आंखों पर हाथ रखे। यीशु उस आदमी की आंखों से हाथ उठाते हुए पूछने लगा, ''क्या तू देखता है?'' यह उस बड़े वैद्य के काम करने की झलक है। वह कितना कोमल और दयालु था! उस आदमी ने बहुत दुःख सह लिया था और बड़े चंगाई देने वाले के हाथों से यह दुःख जाता रहना था।

जब उसने उसकी आंखें खोल दीं तो उस आदमी को साफ़ साफ़ दिखाई नहीं दिया। उसने यीशु को बताया, ''मैं मनुष्यों को देखता हूँ; वे मुझे चलते हुए पेड़ों जैसे दिखाई देते हैं'' (8:24)। स्पष्टतया यह आदमी जन्म से अंधा नहीं था बल्कि कालांतर में किसी समय उसकी आंखों की रौशनी खत्म हो गई थी। उसने अपनी नज़र को खोने से पहले आदमियों और पेड़ों को देखा हुआ था। उसे पता था कि वह क्या देख रहा है, परन्तु वह साफ़ साफ़ नहीं देख पा रहा था। हो सकता है कि यीशु चाहता हो कि पहले उसे थोड़ा थोड़ा दिखाई दे ताकि उसे पता चल सके कि यीशु अपनी सामर्थ से लोगों को पूरी तरह से, सही ढंग से और साफ़ साफ़ दिखा सकता है।

यीशु ने इस आदमी के साथ इसके बाद जो किया उसने उसे उसकी चंगाई के अंतिम चरण में ला दिया। मरकुस 8:25 कहता है, ''तब उसने दोबारा उसकी आँखों पर हाथ रखे, और अंधे ने ध्यान से देखा। वह चंगा हो गया, और सब कुछ साफ-साफ देखने लगा।'' इस चरण के साथ उसकी नज़र लौट आई।

दो चरणों का इस्तेमाल करके यीशु अन्य बातों के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण बात साबित कर रहा था। वह इस बात पर ज़ोर दे रहा था कि उसके आश्चर्यकर्म आधे अधूरे नहीं बल्कि पूरा इलाज हैं। उसने इस आदमी की नज़र थोड़ी लौटाई; परन्तु वहां पर थोड़ा रुकने के बाद, उसने स्पष्टता उस आदमी की नज़र पूरी लौटा दी।

यीशु उस आदमी को लोगों के सामने वापस नहीं लाया। कोई संदेह नहीं कि बाद में उसने नगर में जाकर जो कुछ हुआ था उसका अपने मित्रों और दूसरे लोगों के साथ आनन्द मनाया।

निष्कर्ष: हम पक्का नहीं कह सकते कि यीशु ने यह आश्चर्यकर्म ऐसे क्यों किया, परन्तु इस घटना से कुछ विचार निकल सकते हैं। यीशु ने धुंधली नज़र को साफ़ नज़र में बदल दिया। उसके आश्चर्यकर्मों में हमेशा तीन बातें होती थीं: करुणा, विश्वसनीयता और सम्पूर्णता।

यीशु किस प्रकार का उद्धारकर्त्ता है? वह नकली नहीं है बल्कि असली और वफ़ादार उद्धारकर्त्ता है। वह दयालु, करुणा और प्रेम करने वाला है। उसकी दिलचस्पी भीड़ में है, परन्तु उसकी दिलचस्पी व्यक्ति में भी है। वह हम में से हर किसी को एक ओर ले जाकर हमें अपने व्यक्तित्व को दिखाता है। वह ऐसा उद्धारकर्त्ता है जो पाप की हमारी परिस्थिति का इलाज करके हमें भले चंगे कर देगा। वह अधूरा उद्धारकर्त्ता नहीं है, न ही वह हमें थोड़ा थोड़ा बचाता है। उसका धर्मी ठहराना सम्पूर्ण और पूरा है।

इस सर्वशक्तिमान उद्धारकर्त्ता की सामर्थ, हर किसी के लिए जिसे इसकी आवश्यकता है उपलब्ध है। वह हमारे लिए आश्चर्यकर्म करने का वादा नहीं करता, परन्तु वह वादा करता है कि वह हमारे साथ रहेगा (मत्ती 28:19, 20)। यीशु अपनी सामर्थ से हमें घेरे रहता है; वह जैसा उसे सही लगे वैसे हमारे अंदर और हमारे द्वारा इसे वफ़ादारी से दिखाएगा।

यीशु हम में से हर किसी की राह देखता है कि हम उसके पास आएं, उसके प्रेम को और

चंगाई देने वाले उसके हाथ के स्पर्श को मानकर उसकी बड़ी सामर्थ से उद्धार पाएं।

भविष्य के लिए तैयारी करना (8:27-30)

यीशु अपने प्रेरितों के साथ पलिश्तीन देश की उत्तरी सीमा के इलाके कैसरिया फिलिप्पी में आया था। गांव गांव जाते हुए उसने पृथ्वी की अपनी सेवकाई को अंतिम भाग का आरम्भ किया। वह अपनी मृत्यु और पिता के पास अपने ऊपर उठाए जाने के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर रहा था।

यीशु के चेलों के रूप में, हमारा भविष्य कुछ-कुछ उसके भविष्य के जैसा इस प्रकार का होगा। इस कारण हमें भी भविष्य के लिए आत्मिक रूप में तैयार रहना आवश्यक है।

1. मत्ती और लूका में समानांतर हवालों से पता चलता है कि यीशु ने अपनी तैयारी *सिफारिश में वफ़ादार* होकर की (देखें मत्ती 16:13-20; लूका 9:18-21)। ''सिफारिश'' परमेश्वर से विनती करने का कार्य है। इसका कोई विकल्प नहीं हो सकता।

लूका ने अपने पाठकों के लिए साथ में एक टिप्पणी जोड़ दी, जिसमें उसने यीशु और उसके प्रेरितों के बीच होने वाली बातचीत की पृष्ठभूमि बताई। उसने लिखा, ''जब वह एकान्त में प्रार्थना कर रहा था और चेले उसके साथ थे, तो उसने उनसे पूछा, 'लोग मुझे क्या कहते हैं?''' (लूका 9:18)। गांवों में से होते हुए वे आगे बढ़ते हुए रुक गए; और शायद उनके झपकी लेने के समय यीशु प्रेरितों से दूर जाकर उसके लिए जो उसे करना था, प्रार्थना करने लगा।

हमें चकित नहीं होना चाहिए कि ऐसे समयों में वह प्रार्थना करता था। बपतिस्मा लेकर पाप में से बाहर आने पर यीशु प्रार्थना कर रहा था और प्रेरितों को चुनने से पहले उसने पूरी रात प्रार्थना में बिताई (लूका 3:21; 6:21)। पांच हज़ार पुरुषों (स्त्रियों और बच्चों के अलावा) को खिलाने के बाद, यीशु लोगों को और प्रेरितों को भेजकर ''पहाड़ पर प्रार्थना करने को गया'' (मरकुस 6:46)।

कहते हैं कि ''त्रासदी यह नहीं है कि हम प्रार्थना नहीं करते। त्रासदी यह है कि हम प्रार्थना करने की आवश्यकता को नहीं देखते।'' अपनी स्पष्ट, सिद्ध सोच के साथ परमेश्वर का पुत्र हमेशा प्रार्थना करने के लिए रुकता था। यीशु के लिए अकेले में जाकर अपनी सेवकाई, अपने भविष्य और अपनी योजनाओं को परमेश्वर के सामने लाना वैसा ही स्वाभाविक था जैसा हमारे लिए सांस लेना है। इसके बिना उसने इस पृथ्वी पर नहीं रहना था।

हमारे लिए भी प्रार्थना करना महत्वपूर्ण होना चाहिए। हम यह नहीं कह सकते हैं कि हमारे पास समय नहीं है। यीशु हम में से किसी से बढ़कर व्यस्त था, परन्तु उसने अपने पिता से प्रार्थना करने के लिए समय निकाला। प्रार्थना उसके काम में साथ जोड़ी गई नहीं थी, बल्कि यह उसके काम का मुख्य भाग था।

2. सुसमाचार के चारों विवरणों में, हम देखते हैं कि यीशु ने *सत्यापन में वफ़ादार* होकर अपने भविष्य की तैयारी की। उसकी सेवकाई में मुख्य ज़ोर यह सिखाने पर था कि वह कौन है और वह क्यों आया था? लोगों के मनों में अपने परमेश्वर होने की सच्चाई को डालने के लिए उसने दो वर्षों तक काम किया था। यह सच्चाई इतनी गहरी है कि उसे अपने सुनने वालों को हर बार गहराई से समझाए बिना इसे थोड़ा थोड़ा करके बताना पड़ा।

अपनी सेवकाई के अंत की ओर बढ़ते हुए यीशु ने यह आश्वासन चाहा कि वह अपने

प्रेरितों को अपने परमेश्वर होने का यकीन दिला रहा है। उसने अपनी पड़ताल का आरम्भ यह प्रश्न पूछते हुए किया कि लोग इसके बारे में क्या सोचते हैं (8:27)। उन्होंने उसे बताया कि कुछ तो यह कह रहे थे कि वह यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला ही है, दूसरे लोग कह रहे थे कि वह एलिय्याह है, कुछ ऐसे भी थे जो कह रहे थे कि वह यिर्मयाह जैसे नबियों में से कोई है (8:28)। लोग यीशु को एक भला मनुष्य मानते थे, जिसमें परमेश्वर की ओर से भेजे गए नबी के गुण और विशेषताएं थीं। उन्होंने उसमें यूहन्ना की धार्मिकता, एलिय्याह के द्वारा दिखाई गई ईश्वरीय सामर्थ, यिर्मयाह का तरस (देखें मत्ती 16:14), और उसी सच्चाई को देखा जो पुराने ज़माने के नबियों द्वारा दिखाई गई थी। यीशु में ये सभी गुण थे और लोगों को दिखाई देते थे। ये लोग सही दिशा में जा रहे थे, परन्तु उन्हें अभी यीशु की वास्तविक सच्चाई समझ में नहीं आई थी। उन्होंने नहीं पहचाना कि वह परमेश्वर का पुत्र मसीह है।

अपनी पड़ताल में आगे यीशु ने प्रेरितों से पूछा, ''परन्तु तुम मुझे क्या कहते हो?'' (8:29)। यीशु के लिए यह जानना आवश्यक था कि अपने प्रेरितों के साथ आगे बढ़ रहा है। पतरस ने कहा, ''तू मसीह है'' (8:29)। मत्ती ने पतरस का पूरा उत्तर लिखा होगा: ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' (मत्ती 16:16)। पतरस अपने लिए और बाकी के प्रेरितों की ओर से भी बात कर रहा था।

अपने बारे में ऐसा सम्पूर्ण अंगीकार करने पर यीशु ने पतरस को शाबाश दी। यही वह विश्वास था जो वह चाहता था कि उसके प्रेरितों में हो। इसमें ''मसीह'' और ''जीवते परमेश्वर का पुत्र'' दो आवश्यक बातें थीं। यह अंगीकार यीशु के लिए अच्छी खबर था; अब उसे इन लोगों को गहराई से समझना आवश्यक था, जिसकी उसने बात की थी।

क्या हम अपने आस पास के लोगों को परमेश्वर के राज्य में अपने काम को आगे बढ़ाने के लिए तैयार कर रहे हैं? इस भूमिका में आने के लिए उन्हें तैयार करने का एकमात्र ढंग उन्हें सिखाना है। यीशु की तरह हमें बीच बीच में उनके विश्वास के बढ़ने को चैक करते रहना होगा।

3. यीशु *प्रबन्ध में* भी *वफ़ादार* था। उसने अपने प्रेरितों से कहा: ''... मैं इस पत्थर पर अपनी कलीसिया बनाऊंगा, और अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे'' (मत्ती 16:18)। बहुत जल्द, यीशु ने वास्तव में संसार में अपनी कलीसिया को लाना था और उसके लिए उस घटना के लिए कुछ प्रबन्ध करना आवश्यक था। उसके लिए पतरस और दूसरे प्रेरितों को उस प्रचार के लिए तैयार करना आवश्यक था, जो कलीसिया के आने पर होना आवश्यक था। उन्हें ''राज्य'' और ''कलीसिया'' शब्दों से और कलीसिया के जीवन में पवित्र आत्मा की भूमिका से परिचित होना आवश्यक था। पृथ्वी पर की अपनी सेवकाई के बाकी भाग में, यीशु ने अपने प्रेरितों को विशेष अगुआई देते हुए आने वाले राज्य के लिए आधार बनाया।

निष्कर्ष: यीशु ने भविष्य के लिए तैयार कैसे की? उसने इसके लिए प्रार्थना की और वह याचना करने में विश्वासयोग्य रहा। उसने यह सच्चाई बताई कि वह कौन था और अपनी शिक्षा के बढ़ने की पड़ताल की। उसने अपने आपको उस योजना में आवश्यक स्थान पर रखने को दिया। कलीसिया के स्थापित हो जाने पर उसकी सफलता के लिए आवश्यक आधार और नेटवर्क देने में वह विश्वासयोग्य था।

वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखते हुए, यीशु ने इस पृथ्वी पर अपना समय प्रार्थनापूर्वक

और धार्मिकता से बिताया। पृथ्वी पर के अपने जीवन के अंत के निकट, वह पिता से कह पाया, ''जो कार्य तू ने मुझे करने को दिया था, उसे पूरा करके मैं ने पृथ्वी पर तेरी महिमा की है। अब हे पिता, तू अपने साथ मेरी महिमा ... कर ...'' (यूहन्ना 17:4, 5)।

पृथ्वी पर यीशु का जीवन सिद्ध, पाप रहित, अनुग्रह से भरा और सच्चाई से भरा था। वह पिता के साथ जिसने उसे भेजा था, एक था। जीवन जीने के लिए वह हमारा सबसे बड़ा नमूना है। वह याचना करने में दोष रहित, पड़ताल करने में दोष रहित और प्रबन्ध करने में दोष रहित था। आइए हम जीवन के आरम्भ में, जीवन की निरन्तरता में और जीवन के अंत में उसके पीछे चलें।

बड़े अंगीकार की बड़ी बात (8:27-30)

कैसरिया फिलिप्पी के इलाके में अपने प्रेरितों के साथ चलते हुए, यीशु ने उनसे दो प्रश्न पूछे, जिसमें एक तो लोगों में पाए जाने वाले विचार पर था और दूसरा उनके निजी विचार के बारे में था। पहले उसने अपने बारे में आम धारणा के बारे में पूछा: ''लोग मुझे क्या कहते हैं?'' उन्होंने उसे बताया कि कुछ लोग उसे यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला मानते हैं, कुछ उसे एलिय्याह के रूप में देखते हैं, जबकि दूसरे लोग उसे यिर्मयाह जैसे नबियों में से कोई मानते हैं।

''लोगों'' के बाहरी दायरे के साथ आरम्भ करने के बाद, यीशु ने अपने चुने हुए प्रेरितों के मनों पर ध्यान डाला। उसने पूछा, ''तुम मुझे क्या कहते हो?'' उसके प्रश्न के उत्तर में पतरस बोल उठा, और कितना ज़बर्दस्त जवाब उसने दिया! कई बार पतरस उत्तर दे देता था जब कि उसे पता नहीं होता था कि क्या बोलना है, जैसे यीशु के रूपांतर के समय में वह बोल पड़ा था (मरकुस 9:5, 6)। परन्तु इस बार पर उसे पता था कि क्या कहना है और उसने वही कहा!

मरकुस के अनुसार, पतरस और प्रेरितों द्वारा दिया गया उत्तर केवल इतना था कि ''तू मसीह है।'' यह स्पष्ट है कि मरकुस ने ''मसीह'' शब्द को यीशु के मसीहा होने के साथ-साथ उसके परमेश्वर होने सहित देखा। लूका ने लिखा कि वे कह रहे थे कि यीशु ''परमेश्वर का मसीह'' है (लूका 9:20)। इसलिए लूका ने भी ''मसीह'' शब्द को परमेश्वर के दायरे सहित लिखा। मत्ती ने पतरस और प्रेरितों द्वारा दिए उस उत्तर को पूरा लिखा होगा: ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' (मत्ती 16:16)।

यीशु इस उत्तर से प्रसन्न हुआ। समूह की ओर से अंगीकार पतरस ने ही किया था, इसलिए यीशु ने उससे कहा, ''हे शमौन, योना के पुत्र, तू धन्य है; क्योंकि मांस और लहू ने नहीं, परन्तु मेरे पिता ने जो स्वर्ग में है, यह बात तुझ पर प्रगट की है'' (मत्ती 16:17)।

यह गवाही यीशु को दी जाने वाली सबसे बढ़िया भेंटों में से एक है। यह वह सबसे बड़ा अंगीकार है जो संसार कभी सुन सकता है। अपने प्रोत्साहन और सुधार के लिए, आइए हम पूछें, ''इस बड़ी स्वीकृति को बड़ा कौन सी बात बताती है?''

1. अंगीकार बड़ा है क्योंकि यह *सही* है। ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' वाक यांश में सच्चाई को छोड़ और कुछ नहीं है। यह उतना ही सही है जितनी कोई बात सही हो सकती है। ईश्वरीय प्रकाशन अर्थात पवित्र शास्त्र के संदेश का सार सच्चाई है। बाइबल सच्ची है, इस कारण यह अंगीकार सच्चा है।

इस अंगीकार में तीन निर्विवाद तथ्यों हैं। पतरस ने यीशु को ''मसीह'' माना जिसका अर्थ

है परमेश्वर का ''अभिषिक्त।'' ''मसीह'' इब्रानी शब्द ''Messiah'' (मसीहा) है जो कि ''Christ'' (ख्रिस्त) के तुल्य शब्द है। दोनों ही शब्दों का इस्तेमाल एक और सच्चाई पर संकेत देता है कि वह मनुष्य का पुत्र है। यीशु वही प्रतिज्ञा किया हुआ मसीहा है जो अब्राहम और दाऊद की वंशावली में से आया। उसने अपने विषय में पुराने नियम के सभी वचनों को पूरा किया। तीसरी सच्चाई यीशु के परमेश्वर होने की पुष्टि में कि वह जीवित परमेश्वर का पुत्र है। उसका एक स्वर्गीय पिता है, परन्तु उसे एक सांसारिक माता भी दी गई। वह पवित्र आत्मा के द्वारा गर्भ में आया परन्तु स्त्री से जन्मा।

2. विश्वास की यह बात बड़ी है इसी लिए *सम्पूर्ण* है। जब हम कहते हैं कि ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' तो और कुछ कहने को नहीं रह जाता। हमने एक वाक्य में मसीहियत का सार बता दिया है। यीशु प्रतिज्ञा किया हुआ, मसीहा, मनुष्य का सिद्ध पुत्र और स्वर्ग की ओर से भेजा गया, परमेश्वर का पुत्र है। परमेश्वर में, परमेश्वर की संनातन मंशा में, यीशु की पृथ्वी की सेवकाई में, और यीशु के परमेश्वर होने, उद्धारकर्त्ता होने और सेवक होने में विश्वास किए बिना कोई इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता। इस मानने में सब बातें आ जाती हैं।

1 तीमुथियुस 3:16 में पौलुस ने यीशु की पृथ्वी की सेवकाई को एक ही वाक्य में संक्षिप्त कर दिया। उसने लिखा,

> इस में संदेह नहीं, कि भक्ति का भेद गम्भीर है, अर्थात; वह जो शरीर में प्रगट हुआ, आत्मा में धर्मी ठहरा, स्वर्गदूतों को दिखाई दिया, अन्यजातियों में उसका प्रचार हुआ, जगत में उस पर विश्वास किया गया, और महिमा में ऊपर उठाया गया।

हो सकता है कि ये शब्द नये नियम के संसार में किसी भजन में हों। इस आयत में पौलुस के अंगीकार के छह भाग हैं, जबकि पतरस द्वारा किए गए अंगीकार में केवल दो भाग हैं। पौलुस का अंगीकार अधिक अर्थपूर्ण है, परन्तु पतरस का अंगीकार अधिक व्यापक है। पतरस की दो बातों में 1 तीमुथियुस 3:16 की छह बातों के अलावा और बहुत कुछ जोड़ते हुए सारे विचार आ जाते हैं। जब कोई यीशु के मसीह होने, उसके मनुष्य होने और उसके परमेश्वर होने में विश्वास कर लेता है तो वह बाइबल में उसके बारे में बताई गई हर बात पर विश्वास कर सकता है।

3. यह दावा बड़ा है क्योंकि यह *छुटकारा दिलाने वाला* है। जब कोई यह कह रहा होता है कि ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' तो वह यीशु को संसार का उद्धारकर्त्ता बता रहा होता है। उद्धार को मसीहा से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि मसीहा ही है जो हमें बचाने के लिए आया। पापियों के रूप में, हमें इस सच्चाई को समझना और इस पर बने रहना आवश्यक है। हमारी एकमात्र आशा इसी में है। पौलुस के अनुसार, ''यह बात सच और हर प्रकार से मानने के योग्य है कि मसीह यीशु पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया ...'' (1 तीमु. 1:15)। इस उद्धारकर्त्ता के विषय में, ईमानदारी से कहा जा सकता है:

> हम को उस में उसके लोहू के द्वारा छुटकारा, अर्थात अपराधों की क्षमा, उसके उस अनुग्रह के धन के अनुसार मिला है। जिसे उस ने सारे ज्ञान और समझ सहित हम पर

बहुतायत से किया। कि उस ने अपनी इच्छा का भेद उस सुमति के अनुसार हमें बताया जिसे उस ने अपने आप में ठान लिया था (इफि. 1:7-9)।

4. यह मानना बड़ी बात है क्योंकि यह *बुनियादी* है। जब कोई यह दोहराता है, ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' तो वह उसी मूल आधार को दोहरा रहा होता है जिस पर मसीहियत टिकी हुई है। यह घोषणा ''मसीह'' शब्द को ''मसीही'' और ''मसीहियत'' में डाल देती है।

पतरस के बुनियादी कथन के जवाब में, यीशु ने उससे कहा, ''मैं भी तुझ से कहता हूं कि तू पतरस है, और मैं इस पत्थर पर अपनी कलीसिया बनाऊंगा, और अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे'' (मत्ती 16:18)। यीशु मसीह कलीसिया की नींव है। पौलुस ने कहा, ''क्योंकि उस नींव को छोड़ जो पड़ी है, और वह यीशु मसीह है, कोई दूसरी नींव नहीं डाल सकता'' (1 कुरि. 3:11)। पौलुस ने इस बात पर ज़ोर दिया कि मसीह परमेश्वर की इच्छा के केन्द्र में है। पतरस के बड़े अंगीकार में, हम परमेश्वर के राज्य के आधार और अपने आत्मिक जीवनों के नये आधार को देखते हैं।

5. यह घोषणा बड़ी है क्योंकि यह *प्रकाशन देने वाली* है। परमेश्वर ने हम पर मसीह के महिमामय परमेश्वर होने को प्रकट किया है। जब कोई यह कहता है, ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' तो वह यीशु के परमेश्वर होने की घोषणा कर रहा होता है, जिसका पता उसे परमेश्वर के वचन के ईश्वरीय प्रकाश ने चला है।

यीशु ने पतरस से कहा, ''मांस और लहू ने नहीं, परन्तु मेरे पिता ने जो स्वर्ग में है, यह बात तुझ पर प्रगट की है'' (मत्ती 16:17)। मरकुस 8:29 में पतरस और प्रेरितों ने केवल यीशु को दलेरी देने के लिए नहीं कहा था। पिता ने स्वयं उनसे यह कहलवाया था। यीशु का बपतिस्मा होने के बाद एक बार उन्होंने उससे इस सच्चाई को सुना था (मत्ती 3:17)।

जो कोई भी यह अंगीकार करता है वह मरियम से कहे गए जिब्राइल स्वर्गदूत के शब्दों को सच मान रहा होता है: ''वह महान् होगा और परमप्रधान का पुत्र कहलाएगा'' (लूका 1:32)। मसीह को मानने का अर्थ पौलुस के इन शब्दों की वफ़ादारी की पुष्टि करना है:

> वह तो अदृश्य परमेश्वर का प्रति रूप और सारी सृष्टि में पहिलौठा है।क्योंकि उसी में सारी वस्तुओं की सृष्टि हुई, स्वर्ग की हो अथवा पृथ्वी की, देखी या अनदेखी, क्या सिंहासन, क्या प्रभुताएं, क्या प्रधानताएं, क्या अधिकार, सारी वस्तुएं उसी के द्वारा और उसी के लिए सृजी गई हैं। वही सब वस्तुओं में प्रथम है, और सब वस्तुएं उसी में स्थिर रहती हैं (कुलु. 1:15-17)।

जब कोई सच्चाई की इस बड़ी बात को मान लेता है और सुसमाचार की आज्ञा मानते हुए इसके द्वारा चलता है, तो वह अनन्त जीवन के क्षेत्र में प्रवेश कर लेता है। 1 यूहन्ना 4:15 में यूहन्ना ने इस तथ्य की पुष्टि की: ''जो कोई यह मान लेता है, कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है; परमेश्वर उसमें बना रहता है, और वह परमेश्वर में।'' यूहन्ना ने ''मान लेता है'' शब्द का इस्तेमाल सिनेक्डोकि के रूप में अर्थात सम्पूर्ण का अर्थ देते हुए भाग के रूप में किया। ''मान लेता है'' शब्द में विश्वास के दूसरे सभी कार्य शमिल हैं जो हमें मसीह में लेकर आते और

वफ़ादारी से मसीह में हमें बनाए रखते हैं।

निष्कर्ष: तो फिर हम क्यों कह सकते हैं कि बड़ा अंगीकार बड़ा है? ऐसा हम इसलिए कह सकते हैं क्योंकि यह बिल्कुल सही, निष्कलंक ढंग से पूरा, सिद्ध रूप में छुटकारा दिलाने वाला, अपने आप में बुनियादी और पूरी तरह से प्रकाश देने वाला है।

बाइबल में से यदि प्रेरितों के इस एक अंगीकार निकाल लिया जाए तो पूरा नया नियम ढह जाएगा। कहा गया है कि नया नियम ''यीशु'' नाम के एक ही शब्द के गिर्द घूमता है। नये नियम की हर शिक्षा किसी न किसी रूप में उसी से जुड़ी है।

हम पक्का नहीं कह सकते कि प्रेरितों की समझ कितनी गहरी थी, परन्तु उन्होंने सही दिशा में आरम्भ किया। उन्हें यीशु के विषय में तथ्यों का आरम्भिक ज्ञान था। यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान के बीच में से निकलने के बाद उनकी समझ बढ़ती रहनी थी। शीघ्र ही उन्होंने इस सच्चाई को पूरी तरह से मान लेना था; और इसे मानने के कई सालों बाद उनमें से अधिकतर ने अपने मुंह से इसे संसार को बताते हुए चले जाना था।

क्रिस्तोलोजी और थियोलोजी दोनों साथ साथ चलते हैं। दोनों एक-दूसरे का समर्थन करते हैं। परमेश्वर ने यीशु को इस लिए भेजा ताकि यीशु हमें परमेश्वर के पास ले जा सके। हमारे प्रभु ने कहा, ''मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ; बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता'' (यूहन्ना 14:6)। परमेश्वर और यीशु में हम एक प्रत्यक्ष एकता को देखते हैं। यदि कोई यीशु में विश्वास रखना है तो वह परमेश्वर में विश्वास रखेगा, और यदि वह परमेश्वर में विश्वास रखता है तो वह यीशु में विश्वास रखेगा (यूहन्ना 10:30)।

मसीहियत की ''बड़ी बातें'' (8:27-30)

जब हम मसीहियत पर अर्थात उस ईश्वरीय धर्म पर विचार करते हैं जो मसीह ने हमें दिया है, तो हमारे दिमाग आम तौर पर तीन ऊंचे विचारों पर चले जाते हैं। यह निर्णायक विचार हमें सीधे मसीहियत के सार तक पहुंचा देते हैं। वे हमें मसीहियत के सार यानी यीशु द्वारा हमें दिए गए धर्म के छोटे रूप को दिखाते हैं। वे हमें उस सार को देखने का अवसर देते हैं कि यीशु क्या चाहता है कि हमारे जीवन कैसे हों।

1. हम *बड़े अंगीकार* पर विचार करते हैं। पलिश्तीन की उत्तरी सीमा के इलाके में रहते हुए, यीशु ने अपने प्रेरितों से पूछा, ''लोग मुझे क्या कहते हैं'' (8:27)। उन्होंने उत्तर दिया, ''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला; पर कोई कोई एलिय्याह और कोई कोई भविष्यद्वक्ताओं में से एक भी कहते हैं'' (देखें 8:28; मत्ती 16:14)। फिर सामान्य से विशेष की ओर जाते हुए यीशु ने उनसे पूछा, ''परन्तु *तुम* मुझे क्या कहते हो?'' अपने प्रवक्ता पतरस के द्वार उन्होंने कहा, ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है'' (मत्ती 16:15, 16; देखें मरकुस 8:29)।

इस अंगीकार में अपने आप में यीशु के बारे में सच्चाई के बुनियादी तत्व हैं। यह वह एक वाक्य है जो बिल्कुल सच है। इसमें कुछ भी झूठ नहीं है यानी इसका एक शब्द भी बेकार नहीं है।

मसीह कौन है? वह ख्रिस्तुस यानी मसीहा जो कि परमेश्वर का अभिषिक्त है। वह जीवते परमेश्वर का पुत्र है। वह परमेश्वरत्व में से दूसरा है, जिसे परमेश्वर ने हमें छुड़ाने के लिए संसार में भेजा है। इसके अलावा ''मसीहा'' शब्द में संकेत है कि वह हमारे पापों से हमें बचाने के लिए

परमेश्वर का चुना हुआ है। वह मसीहा, परमेश्वर का पुत्र और हमारा उद्धारकर्त्ता है।

सारी मसीहियत इसी सच्चाई पर टिकी है। बाइबल का सार मसीह का आना है। पुराना नियम भविष्यद्वाणी के द्वारा उसके आने की ओर इशारा करता है। सुसमाचार के विवरण बताते हैं कि वह आ चुका है; प्रेरितों के काम से प्रकाशितवाक्य तक का नये नियम का शेष भाग बताता है कि वह कलीसिया का कोने का सिरा, मसीही लोगों के लिए असली नमूना और कलीसिया का सिर है। हमें अपने जीवनों को इस आधार पर जो मसीह है, बनाना आवश्यक है।

2. हम *बड़ी आज्ञा* पर विचार करते हैं। एक व्यवस्थापक यीशु से मिला। उसे शास्त्रियों और फरीसियों ने उसके पास भेजा होगा। मत्ती 22:35-39 वाली बातचीत को अपने शब्दों में कहें तो वह इस प्रकार से हुई होगी। व्यवस्थापक ने यीशु से पूछा, ''सबसे बड़ी आज्ञा कौन सी है?'' रब्बियों ने पुराने नियम में 613 आज्ञाएं गिनी थीं।[40] यह व्यवस्थापक जानना चाह रहा था कि कौन सी आज्ञा सबसे बड़ी है। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि कोई ऐसी आज्ञा हो सकती है जिसे बड़ी आज्ञा के रूप में यानी ऐसी आज्ञा के रूप में देखा जा सके जिसके नीचे दूसरी सब आज्ञाएं आ सकें। एक अर्थ में यीशु ने कहा, ''मैं तुझे बताता हूं कि सबसे बड़ी आज्ञा और उससे अगली सबसे बड़ी आज्ञा कौन सी है।'' फिर उसने कहा:

> ''तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएं सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार हैं'' (मत्ती 22:37-40)।

हर कोई, यहां तक कि यह व्यवस्थापक भी यीशु की बात से सहमत था।

यीशु हमें परमेश्वर के पास ले जाने के लिए आया। हां, जो धर्म उसने हमें दिया है वह ''Christ-ianity'' (मसीहियत) है; परन्तु इसे ''God-ianity'' भी कहा जा सकता है। यह धर्म वह है जिसे परमेश्वर ने हमें यीशु के द्वारा दिया है। यीशु ने कहा, ''मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ; बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता'' (यूहन्ना 14:6)।

मसीहियत का सार परमेश्वर से प्रेम करना और अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम करना सीखना है। यदि हमारे अंदर परमेश्वर का प्रेम सही ढंग से विकसित हो जाए तो यह अपने आप हमें वे दूसरी सब बातें करने में सहायता करेगा जिन्हें करने की हमें आवश्यकता है। यदि कोई इस आज्ञा को मानता रहता है तो उसे दूसरी सब बातों के प्रति सही ढंग से पेश आना आ जाएगा। इस आज्ञा में हमारे जीने की मुख्य बात बताई गई है।

3. हम *ग्रेट कमीशन* की बात करते हैं। स्वर्ग में लौटने से पहले यीशु ने अपने चेलों को बताया कि वह उनसे उस सुसमाचार का जिसे उसने अपनी पृथ्वी की सेवकाई, अपनी मृत्यु, अपने दफ़नाए जाने और अपने जी उठने के द्वारा तैयार किया था, क्या करवाना चाहता है। उसने सुसमाचार के इस संदेश को उनके सुपुर्द कर दिया और उन्हें कहा कि जाओ इसका प्रचार करो।

इसमें अपने आप में तीन ''सारे'' हैं - इस सारा अधिकार, सारा काम, और सारा आश्वासन। दूसरे शब्दों में, उसने कहा, ''मेरे अधिकार से, तुम सब जातियों के पास जाओ, उन्हें मेरे चेले बनना सिखाओ, और उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम में बपतिस्मा दो। याद रखो कि

जब तुम ऐसा करते हो तो मैं तुम्हारे साथ होऊंगा'' (देखें मत्ती 28:18-20)।

यह आज्ञा हमें हमारा मिशन दे देती है। हम में से कोई स्कूल का शिक्षक है, कोई डॉक्टर और कोई किसान। ये हमारे व्यवसाय हैं, परन्तु ग्रेट कमीशन हमें हमारा मिशन देता है।

निष्कर्ष: इसका अर्थ यह हुआ कि यह मसीहियत का सार है। हम सुसमाचार की आज्ञा मानने के द्वारा मसीही बनते हैं यीशु के परमेश्वर होने की सच्चाई के आधार पर अपने जीवनों को बनाते हुए, परमेश्वर को अपने पूरे मन से प्रेम करते हुए और नये नियम के सुसमाचार को शेष संसार में ले जाते हुए मसीह जैसे जीवन की बुनियादी बातों के साथ आरम्भ करते हैं। ये तीनों, ''बड़ी बातें'' हमारी बुनियाद, हमारे व्यवहार और हमारे मिशन को बताती हैं। ये वे शिक्षाएं हैं जो हमारे जीवन के हर भाग में पहुंच जाती हैं।

मसीहियत: हर कोई इसे समझ सकता है, हर कोई इसे कर सकता है और हर कोई इसके द्वारा उद्धार पा सकता है!

मसीह का दु:ख उठाना (8:31-33)

कैसरिया फिलिप्पी के इलाके में प्रेरितों ने माना था कि यीशु जीविते परमेश्वर का पुत्र मसीह है। पतरस उनका प्रवक्ता था। इस अंगीकार में यीशु के व्यक्तित्व और वजूद की तीनों आवश्यक बातें थीं। उनकी घोषणा से यह संकेत दिया गया कि वे समझ गए हैं कि यीशु कौन है।

यीशु ने प्रेरितों के अंगीकार को स्वीकार कर लिया था और यह अंगीकार करने के लिए उन्हें आशीष दी थी। परन्तु इसके बाद यीशु को उन पर यह प्रकट करना था कि जो अंगीकार उन्होंने अभी अभी किया था उसे पूरी तरह से समझने के लिए अभी उन्हें लम्बा सफ़र तय करना पड़ना था। वह जानते थे कि यीशु मसीहा और परमेश्वर का पुत्र है, परन्तु उन्हें यह समझ नहीं थी कि वह यशायाह 53 में दिखाया गया दु:खी सेवक होगा। यहां पर, अभी भी उन्होंने यीशु के शारीरिक शानो शौकत से सांसारिक राजा होने की कल्पना की। यीशु के बारे में अपने विश्वास में वे सही चल रहे थे; वे उसमें अपने विश्वास में काफ़ी आगे आ गए थे। फिर भी उनके लिए उसे जो उनके आगे आने था, समझने के लिए काफ़ी समझ होनी आवश्यक थी।

यहां वचन में कहा गया है कि यीशु अपने दु:ख उठाने अर्थात उन दु:खों के बारे में बताने लगा जो उसके सामने थे। दु:ख उठाने की तीन चर्चाओं में से यह पहली है (8:31-33; 9:30-32; 10:32-34)। इन बातचीतों में यीशु ने इन लोगों को उन दु:खों के बारे में बताना आरम्भ करना था जो उसने सहने थे। तीनों बातचीतों में मरे हुओं में उसके जी उठने की आशा शामिल थी।

1. 8:31-33 के सम्बन्ध में हमारे लिए अपनी मृत्यु की यीशु की *व्याख्या* को समझना आवश्यक है। यीशु ने अपने प्रेरितों पर यह चौंकाने वाली सच्चाई प्रकट की कि दु:ख उठाना उसकी राह देख रहा था और इसका आरम्भ ठुकराए जाने से होना था। यरूशलेम के धार्मिक अगुओं ने उस पर विश्वास न करना था और उसे ढोंगी घोषित कर देना था। इस ठुकराए जाने को ध्यान में रखते हुए यीशु ने कहा कि उसे ''बहुत दु:ख'' उठाने थे। उसके बहुत से दु:ख परमेश्वर की सनातन योजना के पर्दे के पीछे छिपे हुए थे।

उसने कहा कि यह ठुकराया जाना आवश्यक होना था। उसने संकेत दिया कि उसका दु:ख

सहना ही एकमात्र ढंग था जिसके द्वारा मनुष्यजाति को उद्धार दिलाया जा सकता था। छुटकारे की परमेश्वर की बड़ी योजना के लिए यह आवश्यक था।

यीशु ने पुरनियों, प्रधान याजकों और शास्त्रियों को उसे ठुकराने वालों में से प्रमुख बताया। यह ठुकराया जाना क्रूर और खूंखार होना था। इसने उच्च पद वाले यहूदियों और महासभा के द्वारा उसे दोषी ठहराकर मृत्यु देने में समाप्त होना था। उसने केवल मरना नहीं था बल्कि उसे यहूदियों की व्यवस्था की सबसे बड़ी अदालत के द्वारा हिंसापूर्वक और खतरनाक ढंग से मार डाले जाना था। उसे दफ़ना दिया जाना था; परन्तु तीन दिनों के बाद उसने फिर से जी उठना था। उसे दोषी ठहराए जाने और क्रूस पर चढ़ाए जाने के बाद, उसके मुर्दों में से जी उठकर स्वर्ग में राज करने के लिए, ऊपर उठा लिए जाने पर, उसकी ताजपोशी होनी थी।

जैसा कि उम्मीद थी, इस व्याख्या ने प्रेरितों को उलझन, हैरानी और बेचैनी में डाल दिया। परन्तु जो कुछ होने वाला था उस पर इस समय चर्चा होनी आवश्यक थी और इसके समाप्त होने पर इस पर अतिरिक्त चर्चाएं आवश्यक होनी थीं।

जब कोई यह विश्वास करता है कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है और यह कि वह हमारे बीच में रहने के लिए स्वर्ग से नीचे आया, तो वह यीशु के देहधारी होने और आगमन के दूसरे शानदार पहलुओं पर भी विश्वास कर सकता है। उदाहरण के लिए उसे यह विश्वास करने में कोई परेशानी नहीं आएगी कि यीशु का जन्म विशेष होना था, उसने आश्चर्यकर्म करने वाला होना था जिनसे उसकी सामर्थ की पुष्टि हो जाती और अद्‌भुत शिक्षक होना था। परन्तु उसे यीशु की मृत्यु की अवधारणा, हो सकता है कि अभी भी समझ में न जाए। इस सच्चाई को मान लेना कठिन है कि यीशु ने उस समय के धार्मिक अगुओं यानी शास्त्रियों, प्रधान याजकों और पुरनियों को उसे मार डालने दिया।

2. जो कुछ उसके साथ होने वाला था उसके विवरण में हमारे याद रखने के लिए एक *उदाहरण* है। उसकी स्पष्ट बातें साफ़ नहीं बल्कि नबूवती भी थीं। उसकी पेशनगोई बिल्कुल साफ़ थी, यानी यह साफ साफ भाषा में, बिना किसी लाग लपेट के होती थी। यह ऐसी भविष्यद्वाणी थी जैसे केवल परमेश्वर का पुत्र कर सकता था। यीशु वह प्रकट कर रहा था जो होना आवश्यक था और जो होने वाला था।

इस घोषणा में पूर्व ज्ञान यानी ईश्वरीय दूरदृष्टि थी जो कि प्रकृति के दायरे के ऊपर है। उसकी भविष्यद्वाणी विस्तृत थी। इससे प्रकट हुआ कि महासभा के अधिकारियों, शास्त्रियों, प्रधान याजकों और पुरनियों ने क्या करना था: उन्होंने उसे ठुकराकर मरवा देना था। इसके अलावा उसने अस्पष्ट आशा नहीं बताई कि कब्र के आगे जीवन है क्योंकि संक्षेप में उसने कहा कि ''तीन दिन के बाद'' उसने ''जी उठना'' था (8:31)। यीशु अपने ही जी उठने की भविष्यद्वाणी कर रहा था। परमेश्वर के पुत्र के रूप में ऐसी भविष्यद्वाणी और कौन कर सकता था?

अगली आयतें यह साबित करती हैं कि यीशु सच्चा नबी था। उसने जो भी भविष्यद्वाणी की, वह पूरी हुई। जिसने भविष्यद्वाणियां कीं थीं, उसी ने हर भविष्यद्वाणी को पूरा किया। जिसने इस तस्वीर की भविष्यणी की थी उसी ने यह सब करवाया था। इस गवाही को मान लेने के लिए, यह विश्वास करना आवश्यक है कि पृथ्वी पर रहते हुए भी यीशु समय से ऊपर था। उसने सब कुछ बनाया, सब कुछ बनाए रखता है और सब वस्तुओं को इकट्ठा रखता है। वह परमेश्वर का

पुत्र मसीह है।

यीशु ने ये बातें केवल अपने चेलों को बताईं; परन्तु उसका विवरण देते हुए जो अलंकार या रूपकों के बिना था, वह स्पष्ट भाषा में बात कर रहा था। बाद के समय में प्रेरितों को उसका जो यीशु ने कहा और किया था भेद समझ आने पर उन्होंने चकित होना था।

3. आइए उस *प्रासंगिकता* को देखते हैं जो दु:ख उठाने के पहले संदेश के बाद थी। हम देखते हैं कि यीशु के साफ़-साफ़ कह देने के बावजूद उसके शब्दों का अर्थ गलत निकाला जाता था।

पतरस ने उद्धारकर्त्ता द्वारा की व्याख्या को सुना था, परन्तु वह इस पर विश्वास नहीं कर पाया। उसने यीशु को बचान के लिए आगे आने का निर्णय लिया। वह उसे एक ओर ले गया। वह यीशु के साथ अकेला रहना चाहता था। वह दूसरों के सामने उसे समझाना नहीं चाहता था। फिर वह यीशु को डांटने लगा। पतरस ने कहा, ''हे प्रभु, परमेश्वर न करे! तेरे साथ ऐसा कभी न होगा'' (मत्ती 16:22)।

अभी, बड़ा अंगीकार करके पतरस चोटी पर खड़ा था, और अभी, वह यीशु को डांटकर गहरी खाई में गिर रहा था। यीशु की पीठ दूसरे प्रेरितों की ओर थी। पतरस के यह साफ़ बात कहने के बाद, यीशु ने मुड़कर उनकी ओर मुंह किया। उसके ऐसा करने से उसकी पीठ हो पतरस की ओर गई। फिर यीशु ने पतरस को यह कहते हुए डांटा कि वह परमेश्वर की बातों पर नहीं बल्कि मनुष्यों की बातों मन लगा रहा था।

यीशु ने कहा, ''हे शैतान, मेरे सामने से दूर हो! तू मेरे लिये ठोकर का कारण है; क्योंकि तू परमेश्वर की बातों पर नहीं, परन्तु मनुष्यों की बातों पर मन लगाता है'' (मत्ती 16:23)। विरोधी शैतान ने पतरस के द्वारा बात की और यीशु ने उस दुष्ट को अपने सामने से चला जाने को कहा। परीक्षाओं के जंगल में उसके सामने पहले ऐसी ही परीक्षा आई थी और तब उसने शैतान को मना कर दिया था (मत्ती 4:10)। इस बार भी उसने शैतान को जर्ब्दस्त ढंग से मना करना था, चाहे उसने उसके मुखर प्रेरित के द्वारा ही काम किया था।

मसीह के लिए, परमेश्वर की योजना को पूरा करने का शॉटकट नहीं हो सकता था। यदि परमेश्वर की इच्छा ने क्रूस की ओर इशारा किया, तो उसने इसकी ओर जाना ही था; और उसने अपने रास्ते में किसी भी वस्तु या व्यक्ति को नहीं आने देना था। पतरस की सोच और परमेश्वर की सोच मिलती नहीं थी। पतरस को क्रूस के बारे में वैसे सोचना बंद करके, इसे वैसे देखना आवश्यक था जैसे परमेश्वर देखता है।

निष्कर्ष: दु:ख उठाने के इस हवाले में हमें एक बड़ी सच्चाई मिली है कि संसार के उद्धार में क्रूस का होना आवश्यक था। यह यीशु, जो कि परमेश्वर का पुत्र है, क्रूस के द्वारा लोगों को पाप से छुड़ाने के लिए संसार में आया। इसे उस समय के धार्मिक मनों और दुष्ट हाथों के द्वारा यीशु पर लाया जाना था। यीशु ने उस क्रूस के सामने समर्पण करना था, परन्तु उसने इसे उस वेदी में बदल देना था जिस पर उसने संसार के पाप के लिए प्रायश्चित के अनन्त बलिदान के रूप में अपने आपको चढ़ाना था।

यीशु के सामने दो बड़ी चुनौतियां थीं, परन्तु उनके अंतिम रूप दिए जाने और पूरा होने तक उसने उनके साथ बने रहना था। पहली, तैयारी की उसकी पाठशाला में उसके पास बारह आदमी

थे; उन्हें उसके काम को आगे बढ़ाने के लिए तैयार होना आवश्यक था। वह उनके साथ साथ रहा और अपने काम को उन्हें बताने में लगाया। उसके लिए उन्हें यह बताना आवश्यक था कि उसने एक अपराधी की तरह क्रूस पर चढ़ाए जाना था परन्तु संसार के लोगों को उद्धार के लिए मारे जाना था। यीशु के सामने जो दूसरी चुनौती थी वह हमारे लिए भी बड़ी चुनौती है। पौलुस ने कुरिन्थियों के लिए इस सच्चाई की पुष्टि की: ''परन्तु हम तो उस क्रूस पर चढ़ाए हुए मसीह का प्रचार करते हैं, जो यहूदियों के लिये ठोकर का कारण और अन्यजातियों के लिये मूर्खता है; परन्तु जो बुलाए हुए हैं, क्या यहूदी क्या यूनानी, उनके निकट मसीह परमेश्वर की सामर्थ्य और परमेश्वर का ज्ञान है'' (1 कुरि. 1:23, 24)।

इस युग में जो कि ज्ञान और जागृति का युग लगता है, क्रूस के संदेश के जवाब में हम क्या करेंगे? क्या हम इसका मज़ाक उड़ाएंगे? क्या हम इसे नज़रअंदाज़ करेंगे? कुछ भी करने से पहले, पौलुस के ये शब्द याद रखें: ''परन्तु परमेश्वर ने जगत के मूर्खों को चुन लिया है कि ज्ञानवानों को लज्जित करे, और परमेश्वर ने जगत के निर्बलों को चुन लिया है कि बलवानों को लज्जित करे'' (1 कुरि. 1:27)। वास्तव में, मसीह है कौन? इसका उत्तर यह है: ''परन्तु उसी की ओर से तुम मसीह यीशु में हो, जो परमेश्वर की ओर से हमारे लिये ज्ञान ठहरा, अर्थात् धर्म, और पवित्रता, और छुटकारा'' (1 कुरि. 1:30)।

जो भी कोई क्रूस को ठुकराता है वह परमेश्वर के ज्ञान, धर्म, पवित्रता और छुटकारे को ठुकराता है। उसके लिए यह कितनी बड़ी हानि होगी! जो इसे ठुकराता है उसके लिए कोई उम्मीद नहीं है।

चेला और संसार (8:34-38)

8:34-38 वाले हवाले को 8:27-33 वाले हवाले के साथ सम्बन्ध वाले हवाले के रूप में देखा जाना चाहिए। यीशु ने अभी अभी अपने प्रेरितों के अंगीकार को सुना था और उनके साथ अपने दु:ख उठाने की पहली चर्चा में उन पर अपनी आने वाली मृत्यु को प्रकट किया था। उन चर्चाओं में, और यीशु को पतरस की डांट में, जीवन के दो ढंगों की झलक मिलती है। इसमें से एक झलक पतरस के द्वारा दी गई है। यह मानवीय, रुढ़ीवादी विचार है। यह उसे जो हमारे पास है बचाने पर ज़ोर देता है। यीशु का विचार दूसरा था, यह विचार परमेश्वर की इच्छा के आगे पूरी तरह से झुक जाने का है। यह जो कुछ हमारे पास है उसे परमेश्वर को देने पर ज़ोर देता है।

यह वचन कहता है कि यीशु ने भीड़ को और अपने चेलों को इकट्ठे किया ताकि वह उन्हें चेले होने के अर्थ वाली शिक्षाएं सीधे बता सके। यह बताने के लिए कि उसके अनुयायी क्या विश्वास करें और कैसे जीएं, वह आगे बढ़ा। मसीह का अनुयायी कौन है?

1. *समर्पित चेला।* यीशु ने कहा, ''जो कोई मेरे पीछे आना चाहे, वह अपने आपे से इन्कार करे और अपना क्रूस उठाकर, मेरे पीछे हो ले'' (8:34)।

अनिच्छा से कोई भी मसीह का चेला नहीं है। हर मसीही चेला इसलिए है क्योंकि उसने चेला बनना चुना है। चेला बनने के लिए जिसके भी हम पीछे चल रहे हों, उसके पीछे चलना और सीखना आवश्यक है। मसीह के चेले हम केवल उसके पीछे चलकर और उससे सीखकर ही बन सकते हैं।

यीशु ने अपना चेला बनने के काम को तीन भागों में बांट दिया: त्याग देना, उठा लेना और हिम्मत न हारना। संक्षेप में उसने कहा, ''अपना इनकार करो, अपना क्रूस उठाओ, और मेरे पीछे हो लो'' (देखें मत्ती 16:24; मरकुस 8:34; लूका 9:23)। अपना इनकार करने का अर्थ अपने आप से ''ना'' कहना है। पौलुस के कहने का अर्थ यही था जब उसने कहा, ''मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया'' (गला. 2:20)। यदि पतरस ने अपना इनकार कर देता तो उसने कभी यीशु का इनकार नहीं करना था।

हर चेले के लिए उठाने को एक क्रूस है। यह उठाना सोच समझकर और पक्के तौर पर होना आवश्यक है। हर चेले को यीशु की जीवन शैली को अपनाना आवश्यक है, जो कि कई प्रकार से, उस संसार में, जिसमें हम रहते हैं क्रूस उठाने के जैसा है। यीशु के नमूने के साथ बने रहकर जीना हमारी आदत में पक्के तौर पर शामिल होना आवश्यक है।

2. *बलिदान पूर्वक सेवक।* यीशु ने कहा, ''क्योंकि जो कोई अपना प्राण बचाना चाहे वह उसे खोएगा, पर जो कोई मेरे और सुसमाचार के लिये अपना प्राण खोएगा, वह उसे बचाएगा'' (8:35)। उसके अनुयायी को इस बात की समझ है कि गलत ढंग से जीने का अर्थ मरना है और सही ढंग से मरने का अर्थ जीना है। ''प्राण'' शब्द का दोहरा अर्थ है। यीशु कह रहा था, ''जो कोई इस संसार में अपना प्राण और सुख त्याग देता है उसे इससे बढ़िया आत्मिक जीवन और आने वाले संसार में अनन्त जीवन प्राप्त होगा।'' उसकी बात का उल्टा भी सच है: ''जो भी कोई इस संसार के सुखों, लाभों, और प्रसिद्धि वाले जीवन को भोगने का इरादा करता है, वह अपने आत्मिक जीवन और अनन्त जीवन को खो देगा।'' यदि हम अपने आपको परमेश्वर की आत्मिक बातों के लिए और अनन्त जीवन पाने के लिए देते हैं, तो हमें हर वह चीज़ मिलेगी जिसकी वास्तविक कीमत है। विलियम बार्कले स्वेटे ने इस शिक्षा को अपने शब्दों में इस प्रकार से कहा है: ''जिसका लक्ष्य इस जीवन में व्यक्तिगत सुरक्षा और सफलता को पाना है वह उस उच्च जीवन को खो देता है जिसके वह योग्य है, और जो उन्हें ही मिलता है जो मसीह की सेवा में अपने आपको बलिदान कर देते हैं।''[41]

3. *बुद्धिमान भण्डारी।* यीशु ने कहा, ''यदि मनुष्य सारे जगत को प्राप्त करे और अपने प्राण की हानि उठाए, तो उसे क्या लाभ होगा? मनुष्य अपने प्राण के बदले क्या देगा?'' (8:36, 37)।

उसने दो प्रश्न पूछते हुए इस सच्चाई को बताया। पहला प्रश्न हमारे सामने नैतिक और आत्मिक दायरे में, लाभ और हानि के विकल्प रखता है। अपनी बात को रखने के लिए उसने अतिश्योक्ति का इस्तेमाल किया। यदि प्राण के लिए चुकाई जाने वाली कीमत सारा संसार हो, तो इसकी हानि पूरी और अनन्तकालिक होनी थी। सारे संसार को, तराजू पर रखा जाने पर यह तराजू के दूसरी ओर रखे प्राण के एक पंख से भी हलका है।

दूसरा प्रश्न यह है: ''मनुष्य अपने प्राण के बदले क्या देगा?'' इस प्रश्न का अर्थ यह है कि भौतिक संसार की कोई चीज़ इसके बदल में नहीं दी जा सकती। प्राण के खो जाने पर इसे किसी चीज़ से खरीदा नहीं जा सकता। चरित्र से भविष्य तय होता और चरित्र अस्थिर नहीं रहता बल्कि यह स्थिर हो जाता है।

यीशु ने आगे कहा, ''जो कोई इस व्यभिचारी और पापी जाति के बीच मुझ से और मेरी

बातों से लजाएगा, मनुष्य का पुत्र भी जब वह पवित्र दूतों के साथ अपने पिता की महिमा सहित आएगा, तब उस से भी लजाएगा'' (8:38)। हमारे प्रति मसीह का भविष्य का व्यवहार उसके प्रति हमारे वर्तमान व्यवहार से तय होगा।

यीशु केवल एक असफलता की बात नहीं कर रहा था बल्कि निरन्तर व्यवहार की बात कर रहा था। दो बातें हमारे लिए हैरान करने वाली होनी चाहिए कि मसीह हम से लजाता नहीं है (इब्रा. 2:11) उससे कोई भी और कभी लजा सकता है (देखें मरकुस 14:71)।

निष्कर्ष: यीशु ने हम में से हर किसी को किसी न किसी प्रकार से अनुयायी बनने को बुलाया है। मसीही व्यक्ति को क्रूस उठाने के लिए बुलाया गया है। अस्थाई और अनन्तकालिक मूल्यों में अंतर किया जाना आवश्यक है। वर्तमान ही भविष्य को तय करता है।

इस सारी शिक्षा के केन्द्र में चरित्र का नमूना और सच्चाई का पैमाना मसीह है। उसके साथ हमारा सम्बन्ध आज जो भी है वही सदा तक रहेगा। हम किस फिलॉस्फ़ी को चुनेंगे? एक फिलॉस्फ़ी कहती है, ''इस संसार को रख लो ताकि तुम जीवित रह सको।'' दूसरी फिलॉस्फ़ी कहती है, ''संसार की दृष्टि में जाओ ताकि तुम सचमुच में जीवित रह सको।''

टिप्पणियां

[1]एक समांनातर विवरण मत्ती 15:32-39 में है। [2]सुसमाचार के चारों विवरणें में पांच हज़ार पुरुषों को खिलाने की बात है (मत्ती 14:13-21; मरकुस 6:30-44; लूका 9:10-17; यूहन्ना 6:1-15)। यह चार हज़ार को खिलाने की बात केवल मत्ती और मरकुस में है। मरकुस में, ''प्रकृति के आश्चर्यकर्मों'' में से यह चौथा है। पहले यीशु ने तूफ़ान को थामा था (4:35-41), पांच हज़ार पुरुषों को खिलाया, जिसमें स्त्रियों और बच्चों की गिनती नहीं की गई (6:30-44), और पानी के ऊपर चला था (6:45-52)। [3]विलियम बार्कले, *द गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* दूसरा संस्करण, द डेली स्टडी बाइबल (फिलाडेल्फिया: वैस्टमिंस्टर प्रेस, 1956), 188. [4]*द ज़ौंडरवन पिक्टोरियल बाइबल डिक्शनरी* में कहा गया है कि दलमनूता ''मगदला के साथ लगते गलील की झील के [पश्चिमी] तट पर एक गांव (मत्ती 15:39)'' था (*द ज़ौंडरवन पिक्टोरियल बाइबल डिक्शनरी,* सम्पा. मैरिल सी. टेनी [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1963], 194 में ''दलमनूता'')। [5]जे. डब्ल्यू. मैक्गार्वे ऐंड फिलिप वाई. पेंडल्टन, *द फ़ोरफ़ोल्ड गॉस्पल ऑर ए हार्मनी ऑफ़ द फ़ोर गॉस्पल्स* (सिनसिनाटी: स्टैंडर्ड पब्लिशिंग कं., 1914), 406. [6]*द इंटरनैशनल स्टैंडर्ड बाइबल इन्साइक्लोपीडिया,* सम्पा. जेम्स ऑर (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1939), 3:1961 में डब्ल्यू. युविंग, ''मगदान।'' [7]एक समांनातर विवरण मत्ती 16:1-4 में है। [8]देखें CEV; GNT. ''आह भरी'' के लिए यूनानी शब्द (*अनस्टेनाज़ो*) का इस्तेमाल नये नियम में केवल यहीं हुआ है। [9]आर. ए. कोल, *द गॉस्पल अक्कॉर्डिंग टू सेंट मरकुस: ऐन इंट्रोडक्शन ऐंड कॉमेंट्री,* द टिंडेल न्यू टैस्टामैंट कॉमेंट्रीज़ (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1973), 129. [10]देखें मत्ती 12:38-40 और लूका 11:16, 29; मत्ती 16:1 और मरकुस 8:11; यूहन्ना 4:48; 6:30. चिह्न मांगने की यहूदियों की प्रवृति का उल्लेख 1 कुरिन्थियों 1:22 में भी है।

[11]मरकुस मुख्यतया अन्यजातियों के लिए लिखी गई थी, इस कारण इसमें प्रभु के योना नबी के चिह्न के उल्लेख की बात नहीं है। [12]एक समांनातर विवरण मत्ती 16:5-7 में है। [13]फरीसियों को यकीन था कि उन्हें शास्त्रियों तथा अन्य शिक्षकों की ''मौखिक व्यवस्था'' को अपनी धार्मिक परम्पराओं में जोड़ देना चाहिए, चाहे यह तौरेत में नहीं थीं। वे अपने आपको ऊंचा और दूसरों पर दोष लगाने के आदी थे। [14]एक समांनातर विवरण मत्ती 16:8-12 में है। [15]डोनल्ड इंग्लिश, *द मैसेज ऑफ़ मरकुस: द मिस्टरी ऑफ़ फ़ेथ,* द बाइबल स्पीक्स टुडे (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1992), 155. [16]मैक्गार्वे और पैंडल्टन, 409. [17]बार्कले, 193. [18]समांनातर विवरण मत्ती 16:13-20 और लूका 9:18-21 में हैं। [19]रोनल्ड जे. कर्नाघन, *मरकुस,* द IVP न्यू टैस्टामैंट कॉमेंट्री सीरीज़

(डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 2007), 155. [20]जोसेफ़स *एंटीक्विटीज़* 20.9.4 [211].

[21]बार्कले, 200. ''मसीहा'' के लिए इब्रानी शब्द מָשִׁיחַ (*Mashiach*) है। यूहन्ना 1:41 और 4:25 में पुराने नियम के शब्द का इस्तेमाल लिप्यंत्रण Μεσσίας (*Messias*) के रूप में हुआ है। परन्तु ''मसीह'' (क्राइस्ट) का अर्थ भी ''अभिषिक्त'' है। LXX में इब्रानी शब्द *meshiach* (*मशियाक़*) का अनुवाद करने के लिए *christos* (ख्रिस्टोस या ख्रिस्तुस) का इस्तेमाल हुआ है। [22]वहीं। [23]वहीं, 203. [24]मसादा पहली सदी में मृत सागर के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर हेरोदेस द्वारा बनवाए गए महल और किले वाली जगह थी। पहले यहूदी-रोमी युद्ध में, 70 ई. में यरूशलेम के विनाश के बाद सिकेरी विद्रोही (यहूदी ज़ेलोतेसों का अलग हुआ हुआ दल) नगर में भागकर मसादा किले में रूक गया। इसके बाद उन पर एक रोमी घेराबंदी हुई जो शायद कई महीने तक चली। फ्लेवियुस जोसेफ़स के अनुसार, यह घेराबंदी निसान की पन्द्रहवीं तिथि को खत्म हुई जब विद्रोहियों और यहूदी परिवारों सहित मसादा किले के 960 रहने वालों ने रोमियों के वश में होने के बजाय सामूहिक आत्महत्या कर ली। कहते हैं कि कहानी को बताने के लिए दो महिलाएं और पांच बच्चे छिप कर इसमें बच गए। (जोसेफ़स *वार्स* 7.9.1-2 [389-406]।) [25]ऐलन ब्लैक, *मरकुस*, द कॉलेज प्रेस NIV कॉमैंट्री (जोपलिन, मिसोरी: कॉलेज प्रेस पब्लिशिंग कं., 1995), 155. [26]समांनातर विवरण मत्ती 16:21-23 और लूका 9:22 में हैं। [27]एल. ए. स्टॉफ़र, *मरकुस*, ट्रुथ कॉमैंट्रीज़, गार्डियन ऑफ़ ट्रुथ फ़ाउंडेशन (बॉलिंग ग्रीन, कैंटकी: स्टैंडर्ड पब्लिशिंग कं., 1999), 184. [28]इन ''प्रधान याजकों'' में पूर्व प्रधान याजक शामिल होंगे। (*डिक्शनरी ऑफ़ जीज़स ऐंड द गॉस्पल्स*, सम्पा. जोएल बी. ग्रीन, स्कॉट मैक्नाइट, ऐंड आई. हॉवर्ड मार्शल [डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 1992], 730 में जी. एच. टवेलफ्ट्री, ''सेनहेद्रिन।'') [29]कइयों का मानना है कि मरकुस की पुस्तक रोम के पवित्र लोगों के नाम लिखी गई और इसमें दु:ख सहने इतना अधिक ध्यान दिया गया, क्योंकि इस प्रकार से दु:ख सहने वाले आरम्भिक मसीहियों में से उन्होंने प्रमुख। (स्टॉफ़र, 185.) ऐसा हो सकता है, परन्तु कलीसिया को हर जगह दु:ख सहना था। [30]पुराने नियम में, विशेषकर गिनती 24:16 से आरम्भ करके होशे 11:7 के साथ खत्म होने तक परमेश्वर के लिए ''परमप्रधान'' अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल कई बार हुआ है। नये नियम में ऐसे ही पदनाम यीशु के लिए कई बार मिलते हैं।

[31]देखें भजन 40:6-8. [32]कइयों का विचार है कि पतरस इतना स्तब्ध हो गया कि उसे लगा कि यीशु पागल है। (स्टॉफ़र, 188.) यह एक कारण हो सकता है कि यीशु ने उसे इतनी कठोर डांट के साथ उत्तर दिया। [33]समांनातर विवरण मत्ती 16:24-28 और लूका 9:23-27 में हैं। [34]''Psychology'' (*मनोविज्ञान*) और ''psychiatric'' (*मनोरोगी*) का मूल इस शब्द में देखा जा सकता है। [35]जोसेफ हेनरी थेयर, *ए ग्रीक-इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द न्यू टैस्टामैंट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1962), 677. [36]उत्पत्ति 1:20 में ''जीवित प्राणियों'' के लिए (*nepesh*, *नेपेश*) शब्द इस्तेमाल हुआ है। [37]ब्लैक, 158. [38]कर्नाघन, 164. [39]यीशु के लाज़र को मुर्दों में से जिलाने के समय भी उसने वहां उपस्थिति लोगों से कहा था, ''उसे खोल दो और जाने दो'' (यूहन्ना 11:44)। [40]ताल्मुड *मेक्कोथ* 23बी-24क.

[41]हैनरी बार्कले स्वेटे, द *गॉस्पल अक्कॉर्डिंग टू सेंट मरकुस*, 3रा संस्क. (लंदन: मैक्मिलन ऐंड कं., 1920), 183.